बच्चों की परवरिश

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान

बच्चों की परवरिश

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान

संपादन टीम
ख़ुर्रम इस्लाम क़ुरैशी
इरफ़ान रशीदी
मुहम्मद आसिफ़

cpsInternational
centre for peace and spirituality

Goodword

First Published 2024

This book is copyright free and royalty free. It can be translated, reprinted, stored or used on any digital platform without prior permission from the author or the publisher. It can be used for commercial or non-profit purposes. However, kindly do inform us about your publication and send us a sample copy of the printed material or link of the digital work.
e-mail: info@goodwordbooks.com

CPS International
Centre for Peace and Spirituality International
1, Nizamuddin West Market, New Delhi-110013
e-mail: info@cpsglobal.org
www.cpsglobal.org

Goodword Books
A-21, Sector 4, Noida-201301
Delhi NCR, India
e-mail: info@goodwordbooks.com
www.goodwordbooks.com

Printed in India

विषय-सूची

परिवार: समाज की एक इकाई 5
संतान की स्थिति 6
माता-पिता की ज़िम्मेदारी 7
गंभीर होना ज़रूरी है 8
कुछ तो छोड़ना ही पड़ेगा 10
एक अच्छा उदाहरण 11
बच्चों की शिक्षा 13
अध्यात्मिक माहौल 14
निर्माण का तरीक़ा 15
परवरिश का तरीक़ा 17
अप्राकृतिक प्यार 18
परमपिता की गोद 19
माँ की भूमिका 21
घर का वातावरण 22
परिवार का महत्त्व 23
पारंपरिक शिक्षा 24
प्रशिक्षण शिविर 25
नैतिकता की विरासत 26
पिता का उपहार 27
एक विरासत यह भी है 29
लड़कियों की परवरिश 32
फ़ैमिली कल्चर का नुक़सान 33
एक सामान्य कमज़ोरी 34
छोटा भगवान 35
सफ़लता का मार्ग 36
संतोष और विकास 37
जीविका का प्रश्न 38
माता-पिता की ज़िम्मेदारी 39

बच्चों का सुधार 40
बच्चों में बिगाड़ 42
उलटी परवरिश 43
आराम से रहें बच्चों 44
नकली प्यार 45
सद्भावना या दुर्भावना 46
भविष्य पर विचार करते हुए 47
छोटी-सी बात पर बहुत बड़ा फ़ैसला 48
औलाद की मोहब्बत में हद से बढ़ जाना 50
घर एक प्रशिक्षण स्थल है 51
आशावाद या यथार्थवाद 53
परिवार के सदस्यों का फ़ित्ना 54
परीक्षा का पेपर 55
हाथी की पूँछ में पतंग 56
हर घर भ्रष्टाचार की फैक्ट्री है 58
बच्चों को कष्ट 59
क़ब्रिस्तान 60
दिखावटी ख़रीदारी 61
लाड़-प्यार का नुक़सान 62
बच्चों की परवरिश 63
नैतिक ज़हर 66
एक उदाहरण 67
बच्चों से प्रेरणा 68
एक अलग तरह से सक्षम व्यक्ति 70
योग्यता पैदा कीजिए 71
काम की तलाश में 75
शिक्षण और प्रशिक्षण 76
पहला स्कूल 78
उसे स्कूल से निकाल दिया गया 79
शिक्षा की ओर 81

परिवार: समाज की एक इकाई

ईश्वर के पैग़म्बर, हज़रत मोहम्मद की पत्नी, आयशा के मुताबिक़, हज़रत मोहम्मद ने फ़रमाया: "तुम में सबसे बेहतर वह है, जो अपने परिवार के साथ सबसे बेहतर हो और मैं अपने परिवार के साथ तुम में सबसे बेहतर हूँ।" (सुनन अल-तिर्मिज़ी, हदीस[1] नं. 3895)

परिवार किसी समाज की एक इकाई है। परिवारों का संग्रह ही समाज कहलाता है। अगर परिवार बेहतर होगा, तो समाज भी बेहतर होगा और अगर परिवार बेहतर नहीं होगा, तो समाज भी बेहतर नहीं हो सकता। हर इंसान किसी-न-किसी परिवार में पैदा होता है। घर, परिवार समाज का पहला शिक्षा संस्थान है। इसलिए अगर किसी समाज को बेहतर बनाना है, तो पहले परिवार को बेहतर बनाना होगा।

शिक्षा दो प्रकार की होती है—औपचारिक शिक्षा (formal education) और अनौपचारिक शिक्षा (informal education)। औपचारिक शिक्षा का मक़सद इंसान को नौकरी के लिए तैयार करना है और अनौपचारिक शिक्षा समाज के लिए बेहतर इंसान तैयार करने का एक ज़रिया है। स्कूल और कॉलेज औपचारिक शिक्षा के संस्थान हैं, जबकि परिवार अनौपचारिक शिक्षा का संस्थान है। समाज के भीतर जितने भी अनुभव होते हैं—चाहे सकारात्मक हों या नकारात्मक—वे सभी अनुभव घर के अंदर छोटे स्तर पर होते हैं। घर के अंदर पुरुष और महिलाओं को ये सीखना चाहिए कि जब परिवार का कोई सदस्य उन्हें कष्ट पहुँचाए, तो उसे माफ़ कर दें। इसी तरह जब कोई सदस्य उन्हें फ़ायदा पहुँचाए, तो उसका दिल से शुक्रिया अदा करें।

जिन्हें अपने घर के अंदर ही ऐसी ट्रेनिंग मिलती है, जब वे घर से बाहर निकलते हैं और समाज में दाख़िल होते हैं, तो वे दूसरों के साथ

[1] पैगम्बर मुहम्मद की कथनी करनी जो हदीस की किताबों में संग्रहित हैं।

भी वैसा ही व्यवहार करते हैं। वे अप्रिय बातों को भुला देते हैं और अच्छी बातों पर दूसरों के अच्छे बर्ताव को स्वीकारते हैं। ये ही वे लोग हैं, जो नैतिक रूप से सबसे अच्छे होते हैं। ऐसे ही लोग किसी समाज को बेहतर बनाते हैं।

संतान की स्थिति

एक आदमी का फ़ोन आया। उन्होंने कहा कि क़ुरान में बच्चों को 'फ़ित्ना' (इम्तिहान, उपद्रव,प्रलोभन) कहा गया है। इसका क्या मतलब है? उन्होंने कहा कि मुसलमान आमतौर पर बच्चों को ईश्वर का ईनाम समझते हैं, कोई भी अपनी संतान को फ़ित्ना नहीं कहता। फिर क़ुरान में उन आयतों का क्या मतलब है, जिनमें बच्चों को फ़ित्ना कहा गया है?

मैंने कहा कि बच्चे अपने आप में कोई फ़ित्ना नहीं हैं। ज़हर तो अपने आप में ज़हर है, लेकिन बच्चों का मामला यह नहीं है कि वे पैदा होते ही फ़ित्ना बन जाएँ। असल में यह फ़ित्ना पैदा करने का मामला है, न कि ख़ुद फ़ित्ना होने का। माता-पिता का ग़लत स्वभाव ही बच्चों को फ़ित्ना बना देता है। यदि माता-पिता अच्छे स्वभाव के हैं, तो उनकी संतान उनके लिए फ़ित्ना नहीं बनेगी। फ़ित्ना का शाब्दिक अर्थ परीक्षा है। यह दुनिया एक परीक्षा स्थल है। यहाँ इंसान को जो भी चीज़ें दी जाती हैं, वे सभी उसकी परीक्षा के लिए हैं। दौलत, संतान और बाक़ी सब चीज़ें भी परीक्षा का हिस्सा हैं। इंसान को इन सबका सही इस्तेमाल करना चाहिए।

इस मूल स्थिति को देखते हुए, उसे हमेशा इस परीक्षा में पास होने की कोशिश करनी चाहिए। इस पूरे मामले का सारांश यह है कि इंसान को अपने रचयिता को अपनी सबसे बड़ी चिंता का केंद्र बनाना

चाहिए। सांसारिक चीज़ें, चाहे वह धन हो या संतान या सत्ता, उसकी प्राथमिकता नहीं होनी चाहिए। जो लोग इस परीक्षा में असफ़ल होते हैं, वे ईश्वर के बजाय अन्य चीज़ों को अपने ध्यान का केंद्र बना लेते हैं। ऐसे लोग मौत के बाद आने वाले जीवन में एक निराश इंसान की तरह उठाए जाएँगे, जब उनके सारे सहारे उनसे छिन चुके होंगे। उस समय वे अफ़सोस के साथ कहेंगे: "मुझे मेरा माल कोई फ़ायदा नहीं दे सका। मेरा सारा अधिकार चला गया।" (क़ुरान, 69:28-29)। सच तो यह है कि संतान एक ज़िम्मेदारी है, न कि गर्व या घमंड का विषय।

माता-पिता की ज़िम्मेदारी

बच्चों की परवरिश के बारे में हज़रत मोहम्मद ने कहा —

"अपने बच्चों के साथ अच्छा बर्ताव करो और उन्हें 'अदब-ए-हसन' (अच्छे संस्कार) सिखाओ।"

(सुनन इब्न माजा, हदीस न० 3671),

इस हदीस[2] में 'अदब-ए-हसन' का मतलब है—जीवन जीने का सही तरीक़ा यानी बेटे या बेटी को यह सिखाना कि बड़े होने के बाद वे दुनिया में कैसे रहें कि वे कामयाब हो सकें। अपने घर और समाज पर बोझ (liability) न बनें, बल्कि घर और समाज के लिए एक क़ीमती पूँजी (asset) साबित हों।

अगर माता-पिता अपने बच्चों को लाड़-प्यार (pampering) करते हैं, तो उन्होंने बच्चों को सबसे बुरा तोहफ़ा दिया और अगर माता-पिता अपने बच्चों को सही तरीक़ा सिखाते हैं कि ज़िंदगी कैसे

[2] पैगम्बर मुहम्मद की कथनी करनी जो हदीस की किताबों में संग्रहित हैं।

जीनी है और उन्हें इसके लिए तैयार करते हैं, तो उन्होंने अपने बच्चों को सबसे बेहतरीन तोहफ़ा दिया। मसलन, बच्चों में यह आदत डालना कि वे दूसरों की शिकायत करने से बचें। वे हर मामले में अपनी ग़लती ढूँढें, अपनी ग़लती को सही करें और इस तरह ख़ुद को एक बेहतर इंसान बनाएँ। वे दुनिया में विनम्रता (modesty) के साथ रहें, न कि घमंड और बड़ाई के व्यवहार के साथ। उनकी ज़िंदगी का उसूल यह होना चाहिए कि वे हमेशा ख़ुद को ज़िम्मेदार समझें, न कि दूसरों को। वे अपना वक़्त और अपनी ताक़त सिर्फ़ फ़ायदेमंद कामों में लगाएँ।

माता-पिता को अपने बच्चों को यह सिखाना चाहिए कि अगर तुम ग़लती करोगे तो उसकी क़ीमत तुम्हें ख़ुद चुकानी पड़ेगी। तुम्हारी ग़लती की क़ीमत कोई और अदा नहीं करेगा। कभी दूसरों की शिकायत मत करो। दूसरों की शिकायत करना अपने समय को बर्बाद करना है। हमेशा सकारात्मक सोचो, नकारात्मक सोच से पूरी तरह ख़ुद को बचाओ। बुरी आदतों से इस तरह डरो, जैसे कोई इंसान साँप-बिच्छू से डरता है। माता-पिता को चाहिए कि वे अपने बच्चों को कर्तव्यों के प्रति जागरूक बनाएँ (duty conscious), न कि अधिकारों के प्रति (right conscious)।

गंभीर होना ज़रूरी है

एक आदमी अपने बच्चों के प्रति बहुत सख़्त था। वह हमेशा डाँटता रहता था। कभी किसी ने उन्हें अपने बच्चों से धीरे से बात करते हुए नहीं देखा। लड़के उनसे इतने डरे हुए थे कि कोई भी उनके सामने बोलने की हिम्मत नहीं करता था। जब वे घर में दाख़िल होते, तो सारे बच्चे चुप होकर इधर-उधर छुप जाते थे।

एक दिन की बात है कि वे घर में दाख़िल हुए। सीढ़ियाँ चढ़कर जब वे छत पर पहुँचे, तो उन्होंने देखा कि उनका एक बेटा बिजली के खंभे से चिपका हुआ है। बिजली के तार में एक पतंग फँसी हुई थी। पतंग पाने के शौक़ में लड़का खंभे पर चढ़ गया। अभी उसका काम पूरा भी नहीं हुआ था कि उसके पिता वहाँ पहुँच गए। नज़रें मिलते ही लड़का सहम गया, लेकिन पिता ने बिलकुल कोई सख़्त बात नहीं कही, बल्कि बहुत नरम लहजे में बोले, "बेटा, तुम वहाँ क्या कर रहे हो?" फिर उन्होंने प्यार से लड़के को धीरे-धीरे नीचे उतरने और सुरक्षित तरीक़े से वापस आने को कहा। बाद में, उन्होंने एक व्यक्ति से यह घटना बयान करते हुए कहा, "मैंने मुस्कराकर और नरम लहजे में इसलिए बात की, क्योंकि मुझे डर था कि अगर मैंने इस नाज़ुक मौक़े पर डाँटा, तो वह घबरा जाएगा और खंभे से गिरकर सड़क पर जा गिरेगा। इस नाज़ुक स्थिति ने मुझे मजबूर किया कि मैं अपनी आदत के ख़िलाफ़ बच्चे से मीठे अंदाज़ में बात करूँ।"

अगर आदमी को हालात की नज़ाक़त का एहसास हो और वह उसके लिए चिंतित हो, तो यह दर्द ही उसे उकसावे की बजाय सब्र का तरीक़ा अपनाने पर मजबूर करेगा। वह टकराव की जगह से बचने की कोशिश करेगा। 'कौन सही है और कौन ग़लत' की बहस में पड़ने की बजाय वह समस्या के समाधान पर ध्यान देगा और अगर उसे इस नज़ाकत का एहसास नहीं हो तो वह अपनी आम आदत के मुताबिक़ 'बच्चे' को खंभे पर देखकर बिगड़ जाता, भले इसका अंजाम यह होता कि लड़का 30 फ़ीट की ऊँचाई से सड़क पर गिर जाता और उसकी हड्डी-पसलियाँ टूट जातीं।

यह पूरे इतिहास का तज़ुर्बा है कि जब कोई आदमी किसी मामले में गंभीर होता है, तो उसका अंदाज़ अलग होता है और जब वह गंभीर नहीं होता, तो उसका अंदाज़ बिलकुल अलग होता है। कोई तर्क उसी

के लिए तर्क होता है, जो गंभीर हो। गंभीर आदमी ही किसी बात के वज़न को महसूस करता है। गंभीर आदमी ही किसी मसले की नज़ाकत को अहमियत देता है। इसके विपरीत, जो व्यक्ति गंभीर नहीं होता, वह हर तर्क को काटने के लिए कुछ-न-कुछ कहेगा। हर क़ीमती बात को सुनने के बाद वह एक बे-मतलब बहस छेड़ देगा और अगर उसकी बात का तार्किक जवाब देकर बात को फिर से साफ़ किया जाए, तो वह स्पष्टीकरण के ख़िलाफ़ फिर कोई बे-मतलब बहस निकाल लेगा और असल बात उसकी पकड़ से दूर रह जाएगी। यह एक सच्चाई है कि कोई तर्क उसी के लिए तर्क है, जो उसे समझना चाहे। जो समझना न चाहे, उसके लिए कोई तर्क, तर्क नहीं है।

कुछ तो छोड़ना ही पड़ेगा

मैं दिल्ली के अजमेरी गेट से गुज़र रहा था। एक फेरीवाली औरत की आवाज़ मेरे कानों में आई, "अगर मैं हज़ार रुपये की साड़ी पहनूँगी तो बच्चों की परवरिश नहीं कर पाऊँगी।" उसके बग़ल में बैठी दूसरी फेरीवाली ने उसकी साधारण साड़ी पर एतराज़ किया था। इसके जवाब में औरत ने कहा कि अगर चाहूँ तो मैं भी अच्छी साड़ी ख़रीद सकती हूँ, लेकिन फिर मुझे अपने बच्चों की परवरिश और पड़ाई पर ख़र्च करने के लिए कुछ नहीं बचेगा।

यह ज़िंदगी की एक साधारण हक़ीक़त है। हर आदमी जानता है कि ज़्यादा महत्त्वपूर्ण चीज़ों में अपना पूरा हिस्सा देने के लिए उसे कम महत्त्वपूर्ण चीज़ों में 'सब्र' करना पड़ेगा। कुछ चीज़ों में उसे 'कम' पर राज़ी होना पड़ेगा, ताकि कुछ दूसरी चीज़ों में वह 'ज़्यादा' हासिल कर सके।

यह उसूल हर किसी पर लागू होता है, चाहे वह ग़रीब हो या अमीर। ग़रीब को इस उसूल पर चलने के लिए अगर अपनी ज़रूरतों में कमी करनी पड़ती है, तो अमीर से यह माँग होती है कि वह अपने ऐशो-आराम की चीज़ों में कमी करे। महत्त्वपूर्ण की ख़ातिर महत्त्वहीन की कुर्बानी हर किसी को देनी पड़ती है। इसमें किसी इंसान या दूसरे के बीच कोई फ़र्क़ नहीं है।

मगर लोग इस उसूल को सिर्फ़ अपने घर और अपने बच्चों के मामले में ही जानते हैं। ईश्वर के दीन (धर्म) के मामले में वे इस महत्त्वपूर्ण उसूल को बिलकुल भूल जाते हैं। इस मामले में हर आदमी का वही हाल है, जैसा कि बाइबल में इन शब्दों मैं कहा गया है— "ईश्वर का घर वीरान है, क्योंकि तुम में से हर कोई अपने घर की तरफ़ भागता है"। लोग अपने घर के मामलों को कम महत्त्वपूर्ण और ज़्यादा महत्त्वपूर्ण के हिसाब से देखते हैं। जो कम महत्त्वपूर्ण है उसे छोड़कर, जो ज़्यादा महत्वपूर्ण है उसे अपनाते हैं, लेकिन धर्म और समुदाय के मामले में उनके यहाँ महत्त्वपूर्ण और महत्त्वहीन में कोई फ़र्क़ नहीं होता। यहाँ वे बस अपने मनमर्ज़ी से चलते हैं, चाहे इसका मतलब यह क्यों न हो कि आदमी महत्त्वपूर्ण को छोड़कर महत्त्वहीन चीज़ों के पीछे भागना शुरू कर दे।

एक अच्छा उदाहरण

एक बार दिल्ली के एक कॉलेज के अध्यापक ने बताया कि दिल्ली में छात्रों की एक भाषण प्रतियोगिता (debate) हुई।

इसमें विभिन्न कॉलेजों के चुने हुए छात्र-छात्राओं ने हिस्सा लिया। हर छात्र को अंग्रेज़ी भाषा में भाषण देना था। इन भाषणों में

जज के लिए मुख्य चीज़ जो देखनी थी, वह थी भाषण की डिलीवरी। डॉ. मर्चेंट की बेटी की डिलीवरी सबसे बेहतरीन थी, इसलिए उसे पहला इनाम दिया गया।

इस सफ़लता का राज़ क्या था, इसका जवाब मुझे 26 अगस्त, 2009 को मिला। साई इंटरनेशनल सेंटर (नई दिल्ली) में एक प्रोग्राम के दौरान मेरी मुलाक़ात डॉ. आर.के.मर्चेंट से हुई। वे उच्च शिक्षा प्राप्त हैं और दिल्ली में रहते हैं। उनसे मुलाक़ात के दौरान रिटायर्ड जनरल छब्बर और दूसरे कई लोग मौजूद थे। डॉ. मर्चेंट ने कहा कि मेरे घर में टीवी नहीं है, मैं रेडियो के ज़रिये खबरें सुनता हूँ। उनकी इस बात से मुझे इस सवाल का जवाब मिल गया कि उनके बच्चे शिक्षा में इतने कामयाब क्यों हैं। इससे पहले मैं एक बार डॉ. मर्चेंट के घर गया था। वहाँ मैंने देखा कि उनका घर बहुत सादा है। उनकी दो बेटियाँ हैं। दोनों चुपचाप पढ़ने-लिखने में व्यस्त रहती हैं। डॉ. मर्चेंट के पास अपनी कार है, लेकिन उनकी बेटियाँ हमेशा बस से स्कूल जाती हैं। उनके घर में 'टीवी संस्कृति (TV culture)' का कोई निशान मुझे नहीं दिखा— यही साधारण और उसूलों वाली ज़िंदगी डॉ. मर्चेंट के बच्चों की क़ामयाबी का असली कारण है।

आज कल हर बाप अपनी औलाद से शिकायत करता है, लेकिन हक़ीक़त ये है कि हर बाप को ख़ुद अपनी शिकायत करनी चाहिए। आमतौर पर माता-पिता ये करते हैं कि वे अपने घर के माहौल को सादा नहीं बनाते। उनकी सबसे बड़ी ख़्वाहिश यही रहती है कि वे अपने बच्चों के हर शौक़ को पूरा कर सकें। वे अपने बच्चों को 'टीवी संस्कृति' का आदी बना देते हैं। यही वह चीज़ है, जो घरों के बिगाड़ का असली कारण है। इस बिगाड़ की तमाम ज़िम्मेदारी माता-पिता पर है, न कि औलाद पर।

बच्चों की शिक्षा

एक पश्चिमी देश में रहने वाले एक मुस्लिम परिवार ने यह ज़ाहिर किया कि वे ये चाहते हैं कि उनके बच्चे कुछ दिनों के लिए हमारे यहाँ आकर ठहरें और हमसे इस्लामी शिक्षा हासिल करें। मैंने इस प्रस्ताव को नामंज़ूर कर दिया। मेरे नज़दीक ये शिक्षा का एक बनावटी तरीक़ा है। इस दुनिया में कोई भी असरदार काम सिर्फ़ प्राकृतिक तरीक़े से ही पूरा हो सकता है। प्राकृतिक तरीक़ा किसी भी काम के लिए हरगिज़ फ़ायदेमंद नहीं है।

इस सिलसिले में मुझे एक घटना याद आती है। अप्रैल 1981 में एक अंतर्राष्ट्रीय कॉन्फ्रेंस में भाग लेने के लिए मैं बारबाडोस (Barbados) गया था। इस दौरान वहाँ के रहने वाले मुसलमानों ने मेरी तक़रीर का इंतज़ाम एक मस्जिद में किया। एक साहब अपने एक बच्चे को साथ लेकर आए। वह बच्चा, जो तक़रीबन 12 साल का था, असल बैठक से बाहर एक जगह इस तरह बैठा था कि उसकी पीठ मेरी तरफ़ थी और उसका चेहरा दूसरी तरफ़।

एक शख़्स ने उससे कहा कि तुम इस तरह क्यों बैठे हो, अंदर चलो और लोगों के साथ बैठो।

लड़के ने बेहद बेपरवाही से जवाब दिया—'मी नॉट' यानी मुझे इससे कोई मतलब नहीं है।

ये घटना आज कल के तमाम मुस्लिम घरानों के लिए एक प्रतीकात्मक घटना है।

आज कल के लोगों का हाल ये है कि वे मेहनत करके कमाते हैं और फिर मोहब्बत के नाम पर अपनी कमाई का बड़ा हिस्सा बच्चों

पर ख़र्च कर देते हैं। लेकिन हक़ीक़त में ये मोहब्बत नहीं है, बल्कि यह लाड़-प्यार (pampering) है और यही एक वजह है कि बच्चों को बिगाड़ने का सबसे बड़ा कारण यही लाड़-प्यार है।

किसी बच्चे के पहले तकरीबन 10 साल वे होते हैं जिसे मनोवैज्ञानिक ज़बान में 'तशकीली दौर' (formative period) कहा जाता है। यह वह समय होता है जब किसी व्यक्ति के विचार, आदतें, व्यक्तित्व या चरित्र का निर्माण होता है। यह तशकीली दौर बेहद अहम है, क्योंकि इस तशकीली दौर में बच्चे के अंदर जो व्यक्तित्व बनता है, वही सबसे अहम होती है। यही व्यक्तित्व बाद की पूरी उम्र में बाक़ी रहती है। इसी हक़ीक़त को एक अरबी कहावत में इस तरह बयान किया गया है, जिसका अनुवाद है —

"आदमी जिस चीज़ पर जवान होता है, उसी पर वह बूढ़ा होता है।"

अध्यात्मिक माहौल

एक पढ़े-लिखे मुसलमान से मुलाक़ात हुई। उन्होंने बड़ी ख़ुशी से बताया कि उनका रोज़ का यह नियम है कि वे हर सुबह अपने घरवालों को एक जगह बिठाते हैं और किसी अध्यात्मिक किताब का एक हिस्सा पढ़कर उन्हें सुनाते हैं। मुझे बहुत से ऐसे लोगों के बारे में पता है, जो इस तरीक़े को अपना रहे हैं। वे सोचते हैं कि ऐसा करके वे अपना धार्मिक फ़र्ज़ निभा रहे हैं, लेकिन यह तरीक़ा इंसान की क़ाबिलियत को कम आँकने जैसा है। इंसान ऐसी रस्मी बातों से अपना मन नहीं बदलता।

लेकिन इस तरह घरवालों को अध्यात्मिक किताब पढ़कर सुनाना असल ज़िम्मेदारी का आधा हिस्सा है। असली ज़िम्मेदारी का पहला

हिस्सा यह है कि घर के अंदर अध्यात्मिक माहौल बनाया जाए। अगर घर में सही माहौल न हो, तो इस तरह किताब पढ़ने से मनचाहा नतीजा नहीं मिलेगा।

लोगों की हालत यह है कि उनके घर में पूरी तरह सांसारिक माहौल होता है। घर के अंदर दूसरों के ख़िलाफ़ शिकायतें होती हैं। घर में नकारात्मक ख़बरों की बातें होती रहती हैं। इंसानी भलाई की कोई चर्चा नहीं होती, बल्कि घर के अंदर 'अपने' और 'पराए' की भावना होती है। घर में ज़्यादातर बातें खाने, कपड़े, पैसे, व्यापार और नौकरी के इर्द-गिर्द ही घूमती हैं।

घर में अध्यात्मिक किताब पढ़कर सुनाना निस्संदेह एक अच्छी बात है, लेकिन इसे असरदार बनाने के लिए घर के अंदर सही माहौल होना ज़रूरी है। किताब पढ़ने से पहले और बाद में घर का माहौल वैसा ही होना चाहिए, जैसा किताब में बताया गया है। किसी घर को अध्यात्मिक बनाना तभी मुमकिन है, जब इसे पूरी संजीदगी से किया जाए। घर का माहौल धर्म के अनुकूल बनाए बिना, सिर्फ़ किताब पढ़ने से ऐसा करना ऐसा है मानो हाथी की पूँछ में पतंग बाँधना। इस तरह से घर के ज़िम्मेदारों की ज़िम्मेदारी पूरी नहीं हो सकती।

निर्माण का तरीक़ा

ब्रह्मांड ईश्वर की मूक किताब है। यह दिव्य सच्चाइयों को दृष्टांतों के रूप में बयान करती है। अगर इंसान इस ब्रह्मांड की मूक भाषा को सुन सके तो यह उसके लिए ज्ञान का सबसे बड़ा पुस्तकालय बन जाएगा।

पेड़ को देखो। जब पेड़ ज़मीन से निकलता है तो वह एक कमज़ोर पौधे जैसा होता है। जिस वक़्त पेड़ के तने में अभी तूफ़ान का सामना करने की ताक़त नहीं होती। उस वक़्त पेड़ क्या करता है? वह पूरी तरह से नरम हो जाता है। हवा के झोंके आते हैं, तो वह उनसे लड़ता नहीं, बल्कि हवा उसे जिस दिशा में ले जाना चाहती है, वह उसी दिशा में झुक जाता है। वह आज के ज़माने में, 'चलो तुम उधर को, हवा हो जिधर की' का जीता-जागता चित्र बन जाता है, है, लेकिन वही पौधा जब 25 साल बाद देखा जाता है, तो वह बिलकुल अलग नज़ारा पेश करता है। अब वह अपने मज़बूत तने पर मज़बूती से खड़ा रहता है। अब 'झुकने' का शब्द उसकी डिक्शनरी से निकल चुका होता है। वह हवा के झोंकों से बेअसर होकर अपनी जड़ों पर सीधा खड़ा रहता है। अब वह ज़मीन पर 'पेड़' बनकर रहता है, जबकि पहले वह एक 'पौधा' था।वह समय आता है, जब उसे निर्माण के लिए एक अंतराल की ज़रूरत होती है। जब उसे अपनी जड़ें ज़मीन में जमानी पड़ती हैं। उसे अपने तने को मज़बूत बनाना पड़ता है। उसे अपने आपको एक ताक़तवर अस्तित्व के रूप में विकसित करना होता है। इस अंतराल के दौरान उसे वैसे नहीं रहना चाहिए, जैसे कोई व्यक्ति मज़बूत और स्थिर होने के बाद रहता है। इस शुरुआती चरण में उसे नरमी और समायोजन का प्रतीक बनना चाहिए। अगर उसने ऐसा नहीं किया, तो उसे निर्माण का अंतराल नहीं मिलेगा और जो निर्माण के अंतराल से वंचित रहेगा, वह कभी भी निर्माण के चरण तक नहीं पहुँच पाएगा। ऐसा व्यक्ति हमेशा एक कमज़ोर पेड़ बनकर ही रहेगा।

परवरिश का तरीक़ा

एक सज्जन को उनके पड़ोसी ने बहुत कड़ी बात कह दी। यह सुनकर वह चुपचाप अपने घर आ गए। उन्होंने बोलने वाले को कोई जवाब नहीं दिया। जब उनके बेटे को इस बात की ख़बर हुई, तो वह बहुत नाराज़ हुआ। उसने कहा कि इस आदमी की हिम्मत कैसे हुई, जो मेरे पिता का इस तरह अपमान करे। मैं उसे ऐसा सबक़ सिखाऊँगा कि वह आगे से ऐसी हिम्मत नहीं करेगा।।

पिता ने बेटे को शांत किया। पिता ने कहा कि आख़िर उसने सिर्फ़ एक शब्द कहा है। उसने मुझे कोई पत्थर तो नहीं मारा। फिर इसमें हमारा क्या नुक़सान है? उसने अपनी ज़बान ख़राब की है, तो हम अपनी क्यों ख़राब करें? पिता ने अपने बेटे से कहा कि तुम इसे भूल जाओ और अपने काम में लग जाओ। बेटा उस घटना को 'याद' के ख़ाने में रखना चाहता था, लेकिन पिता ने उसे 'भूल' के ख़ाने में डाल दिया। जो घटना आमतौर पर ग़ुस्से और बदले का कारण बनती, वह अब धैर्य और सहनशीलता का विषय बन गई। कुछ दिनों बाद पड़ोसी को ख़ुद शर्मिंदगी हुई। उसने आकर अपनी ग़लती की माफ़ी माँगी और भविष्य में पहले से बेहतर बन गया।अगर पिता अपने बेटे के मन में बदले की भावना भर देता, तो वह बुराई का साथी बन जाता, लेकिन जब पिता ने अपने बेटे को भूलने और सहनशीलता के रास्ते पर डाला, तो वह उसके लिए भलाई और सच्चाई का मार्गदर्शक बन गया। क़ुरान के शब्दों में, वह सच्चे और पवित्र लोगों का रहनुमा बन गया (अल-फ़ुरक़ान, 25:74)।

इसी का नाम बच्चों की परवरिश है। बच्चों की परवरिश यह नहीं है कि एक ख़ास समय तय करके उन्हें बैठाकर लिखने या बोलने के रूप में सुधारात्मक बातें सुनाई जाएँ।

असली परवरिश तब होती है, जब घर के अंदर व्यवहारिक रूप से ऐसे मौक़े पैदा होते हैं, जहाँ एक रास्ता सही दिशा में जाता है और दूसरा ग़लत दिशा में। ऐसे मौक़ों पर भावनाओं को सहन करते हुए और व्यक्तिगत नुक़सान उठाकर घरवालों को सही मार्गदर्शन दिया जाता है। उनके मन को एक दिशा से दूसरी दिशा में मोड़ना—यही असली परवरिश है, न कि केवल उपदेश देकर सिखाना।

अप्राकृतिक प्यार

15 अक्टूबर, 2003 को मैं सूरत (गुजरात) में था। वहाँ मैं एक होटल में रुका हुआ था। एक स्थानीय मुस्लिम मुझसे मिलने होटल में आए। उनके साथ एक छोटा बच्चा भी था। उन्होंने उस बच्चे को अपनी गोद में लिया हुआ था। वह कभी बच्चे को अपने कंधे पर बिठाते और कभी गोद में लेते। जब वे मेरे कमरे में आकर बैठे तो मैंने उनसे पूछा, "क्या यह आपका बेटा है?"

उन्होंने ख़ुशी से कहा, "हाँ।"

मैंने कहा, "आप तो अपने बेटे के दुश्मन हैं। आपका यह प्यार उसके लिए दुश्मनी जैसा है।"

यह अप्रत्याशित टिप्पणी सुनकर वे घबरा गए। उन्होंने पूछा, "कैसे?"

मैंने कहा, "आप हमेशा अपने बेटे को गोद में नहीं रख सकते। आख़िरकार उसे एक ऐसी दुनिया में जाना होगा, जहाँ उसे कोई गोद में लेने वाला नहीं होगा। बच्चे के लिए सच्चा प्यार यह है कि आप उसे भविष्य की परिस्थितियों का सामना करने के लिए तैयार करें, न कि

उसे ऐसी दुनिया में जीने वाला बनाएँ, जो आपकी गोद से बाहर कहीं अस्तित्व ही नहीं रखती।"

उन्होंने कहा, "यह तो अभी छोटा बच्चा है।"

मैंने कहा, "आपकी यह सोच प्रकृति के ख़िलाफ़ है।"

इसके बाद उन्होंने अपने बच्चे को गोद से उतार दिया। गोद से उतरते ही बच्चा ज़मीन पर दौड़ने लगा। उसकी स्थिति उस चिड़िया जैसी हो गई, जो पिंजरे में बंद थी और पिंजरे से आज़ाद होते ही हवा में उड़ने लगी।

प्रकृति के नियम के अनुसार, बच्चा माता-पिता की गोद में रहने के लिए पैदा नहीं होता। बच्चा इसलिए पैदा होता है कि वह दुनिया के खुले मैदान में दौड़े, जीवन के संघर्ष में शामिल हो। वह हर प्रकार के अनुभवों से गुज़रते हुए अपना भविष्य बनाए। वह अनुकूल (favorable) और प्रतिकूल (unfavorable) परिस्थितियों का सामना करते हुए अपने जीवन की यात्रा तय करे। ऐसी स्थिति में बच्चे को माता-पिता के स्नेह का आदी बनाना प्रकृति की योजना के ख़िलाफ़ है। यह प्रकृति के नियम से लड़ना है। माता-पिता को चाहिए कि वे इस प्राकृतिक सत्य को समझें और उसी के अनुसार अपनी संतान की परवरिश करें।

परमपिता की गोद

भारतीय कथाओं में एक कहानी है कि एक राजा की दो रानियाँ थीं। दोनों रानियों के एक-एक बच्चा था। उनके बीच हमेशा प्रतिस्पर्धा (competition) रहती थी। एक दिन एक रानी का बच्चा राजा की गोद में बैठ गया। दूसरी रानी ने यह देखा तो उसे बहुत ग़ुस्सा आया। उसने

दूसरी रानी के बेटे को हटाकर अपने बेटे को राजा की गोद में बिठा देती है। बच्चा रोते हुए अपनी माँ के पास गया और उसे पूरी कहानी बताई। माँ ने कहा, "हे मेरे बेटे, तुम परमपिता की गोद में बैठ जाओ। इसके बाद तुम्हें इन बातों की कोई शिकायत नहीं होगी।"

यह एक रूपक कथा है। हालाँकि, इसमें एक बहुत बड़ा सबक़ छिपा है। इंसान आमतौर पर कई तरह की शिकायतें लेकर जीता है। उसे अपने परिवार या समाज के लोगों से नापसंद अनुभव होते रहते हैं, जो उसकी शिकायतें बनकर उसके दिल में बस जाते हैं, लेकिन ये सब बहुत छोटी-छोटी बातें हैं। असल में बड़ी बात यह है कि इंसान को ईश्वर की यादों में जीना चाहिए। उसे अपना सारा भरोसा ईश्वर पर रखना चाहिए। वह ईश्वर की दी हुई चीज़ों की महानता में इतना खो जाए कि उसे याद ही न रहे कि किसी और ने उसे क्या दिया और क्या नहीं दिया।

इंसानों से शिकायत करना वास्तव में ईश्वर को नज़रअंदाज़ करने का परिणाम है। ईश्वर ने इंसान को इतनी अनगिनत नेमतें दी हैं, जो एक असीम सागर की तरह हैं और इंसानों की तरफ़ से जो कुछ भी आता है, वह इसके सामने एक बूँद से भी कम है। इस ईश्वरीय वरदानों के समुद्र में अगर कोई व्यक्ति एक और बूँद डाल भी दे, तो उससे समुद्र में कोई बढ़त नहीं होगी और अगर कोई व्यक्ति इस समुद्र से एक बूँद निकाल भी ले, तो भी उसमें कोई कमी नहीं आएगी।

हर इंसान 'परमपिता' की गोद में बैठा है। इस बात का यदि पूरी तरह से एहसास हो जाए, तो इंसान बड़ी से बड़ी शिकायत को भी इस तरह नज़रअंदाज़ कर देगा, जैसे उसमें कोई सच्चाई ही न हो।

माँ की भूमिका

मुल्ला अब्दुल नबी (मृत्यु 1583 ई०) सम्राट अकबर के समय के महान विद्वानों में से एक थे। उनके द्वारा बनवाई गई एक मस्जिद आज भी नई दिल्ली में बहादुर शाह ज़फ़र मार्ग के किनारे मौजूद है, जिसे अब्दुल नबी की मस्जिद के नाम से जाना जाता है। मुल्ला अब्दुल नबी सम्राट अकबर के गुरु थे। इस कारण वे अकबर के दरबार में बिना किसी रोक-टोक के आते-जाते थे।

अकबर ने मुल्ला अब्दुल नबी को सरकार में 'सद्र-ए-सुदूर' के पद पर नियुक्त किया। अकबर से उनके विशेष संबंधों के कारण मुल्ला अब्दुल नबी को उस युग में बहुत ही सम्मानजनक पद मिला। मुल्ला अब्दुल कादिर बदायूनी के अनुसार, किसी भी राज्य में शाही को वह महत्त्व नहीं मिला, जो मुल्ला अब्दुल नबी के समय में मिला था:

"इस समय किसी भी राज्य में ऐसा कोई प्रमुख नहीं चुना गया।"

अकबर की मुल्ला अब्दुल नबी के प्रति इतनी आस्था थी कि अकबर उनके जूते सीधा किया करता था। वह उनके पास जाकर पैग़म्बर मोहम्मद की कथनी-करनी सुनता था। मुल्ला अब्दुल नबी की संगत से उसकी धार्मिकता इस हद तक पहुँच गई थी कि वह मस्जिद में ख़ुद अज़ान देता था और पुण्य की ख़ातिर कभी-कभी मस्जिद में झाड़ू भी लगाता था।

एक बार ऐसा हुआ कि अकबर के जन्मदिन का जश्न मनाया जा रहा था। अकबर ने अपनी प्रसिद्ध नीति के अनुसार उस दिन जो कपड़ा पहना था, वह भगवा रंग का था। मुल्ला अब्दुल नबी ने इसे देखा और इसे हिंदू रंग समझकर ग़ुस्से में आ गए और भरे दरबार में अकबर को अपनी लाठी से मार दिया। अकबर को यह बात नागवार गुज़री, लेकिन

वह चुपचाप उठकर महल के अंदर चला गया। महल में उसकी माँ, मरियम मकानी मौजूद थीं। उसने अपनी माँ से कहा, "आज मुल्ला अब्दुल नबी ने भरे दरबार में मुझे मारा। अगर वे मुझे अकेले में सलाह देते, तो इसमें कोई बुराई नहीं होती।"

अकबर की माँ मरियम मकानी एक बुद्धिमान और विद्वान महिला थीं। उन्होंने अकबर की बात सुनकर कहा, "बेटे, दिल पर मैल मत लो, यह तुम्हारे लिए परलोक में मुक्ति का साधन है। क़यामत तक चर्चा रहेगी कि एक बेबस मुल्ला ने बादशाह के साथ यह हरकत की और समझदार बादशाह ने धैर्य से काम लिया।" (मासिर अल-अमरा, खंड II, पृष्ठ 560)। इससे यह पता चलता है कि बच्चों की मानसिकता बनाने में माँ की भूमिका बेहद अहम होती है।

घर का वातावरण

आज कल यह स्थिति है कि सेक्युलर व्यक्ति और धार्मिक व्यक्ति का फ़र्क़ बाहरी जीवन में तो दिखता है, लेकिन घर की ज़िंदगी में यह अंतर नहीं दिखता। ज़ाहिर है, दोनों के कपड़े अलग होते हैं। अगर सेक्युलर व्यक्ति 'गुड मॉर्निंग' कहता है, तो धार्मिक व्यक्ति 'अस्सलाम अलैकुम' कहता है। सेक्युलर व्यक्ति अगर क्लब जाता है, तो धार्मिक व्यक्ति मस्जिद जाता है, वग़ैरह, लेकिन यह अंतर सिर्फ़ बाहरी जीवन तक सीमित है। घर के अंदर का माहौल देखें, तो सेक्युलर व्यक्ति के घर और धार्मिक व्यक्ति के घर में कोई फ़र्क़ नज़र नहीं आएगा और अगर कोई फ़र्क़ होगा, तो वह सिर्फ़ रस्मों का होगा, न कि असलियत का।

क़ुरान में दोनों प्रकार के घरों की पहचान बताई गई है। अधार्मिक व्यक्ति के घर की पहचान जानने के लिए क़ुरान की इस आयत का

अध्ययन करें: "वह अपने परिवार के बीच ख़ुश रहता था" (84:13)। इसका मतलब है कि अधार्मिक व्यक्ति का जीवन परिवार-केंद्रित होता है। वह अपने घर आकर महसूस करता है कि वह अपने लोगों के बीच है। वह अपना सारा समय और पैसा अपने परिवार पर ख़र्च करता है और संतुष्ट रहता है कि उसने अपने समय और पैसे का सही इस्तेमाल किया है। वह अपने परिवार को देखकर ख़ुश होता है। उसकी दिलचस्पियों और गतिविधियों का केंद्र उसका परिवार ही होता है। जो लोग इस तरह जीवन बिताते हैं, वे कभी भी ईश्वर के सच्चे बंदे नहीं बन सकते। ईश्वर की अनंत दया में उनके लिए कोई स्थान नहीं होता।

धार्मिक व्यक्ति के घर की पहचान क़ुरान की इस आयत में मिलती है: "स्वर्ग वाले कहेंगे कि इससे पहले हम अपने परिवार के बीच रहते हुए भी डरते थे" (52:26)। इसका मतलब यह है कि सच्चा धार्मिक व्यक्ति वही है, जो हमेशा ईश्वर के न्याय से डरता है, चाहे वह अपने घर के बाहर हो या अंदर। वह जवाबदेही के मनोविज्ञान के साथ जीवन बिताता है, न कि निडरता के साथ।

परिवार का महत्त्व

परिवार महान इंसानियत की एक इकाई है। परिवार के भीतर सीमित दायरे में वे सभी स्थितियाँ होती हैं, जो इस विशाल इंसानियत में बड़े स्तर पर घटित होती हैं। इस दृष्टि से, परिवार हर व्यक्ति के लिए एक विद्यालय जैसा है। हर इंसान अपने परिवार के अंदर वे सभी चीज़ें सीख सकता है, जो दुनिया में सफ़ल जीवन जीने के लिए ज़रूरी हैं, लेकिन इसकी एक शर्त है कि व्यक्ति परिवारवाद का शिकार न हो। वह अपने परिवार को भी उसी नज़र से देखे, जैसे वह अन्य इंसानों को देखता है।

सच यह है कि दुनिया में जितने भी प्रकार के चरित्र होते हैं, वे सभी किसी व्यक्ति के अपने परिवार के सदस्यों में भी पाए जाते हैं। परिवार हर व्यक्ति के लिए पारंपरिक 'जाम-ए-जमशेद' (जादुई प्याला) की तरह है। परिवार के आईने में व्यक्ति हर तरह के नैतिकताओं का उदाहरण देख सकता है। इस तरह, हर व्यक्ति के लिए यह संभव है कि वह अपने परिवार और रिश्तेदारों को देखकर जीवन का अनुभव प्राप्त करे और अपने जीवन की यथार्थवादी ढंग से योजना बनाए।

लेकिन ऐसे बहुत कम लोग होते हैं, जो इस नज़दीकी अवसर का लाभ उठाते हैं। इस कमी का कारण क्या है? इसका कारण केवल एक ही है और वह है लोगों में व्यक्तिपरक सोच (subjective thinking) की कमी। लोगों की स्थिति यह है कि वे अपने परिवार के सदस्यों के बारे में बहुत जल्दी पक्षपाती सोच का शिकार हो जाते हैं। उन्हें अपने घरवालों की ग़लतियाँ दिखाई नहीं देतीं। वे परिवार से बाहर के लोगों के बारे में असंवेदनशील तरीक़े से सोचते हैं और अपने परिवार के सदस्यों के बारे में सहानुभूतिपूर्ण ढंग से। वे बाहर के लोगों को एक नज़र से देखते हैं और अपने परिवार के सदस्यों को दूसरी नज़र से। इस तरह, उनकी स्थिति यह हो जाती है कि वे न अपने लोगों की ज़िंदगी से कुछ सीखते हैं और न दूसरों की ज़िंदगी से कोई सबक़ लेते हैं।

पारंपरिक शिक्षा

अमेरिका की यात्रा हुई। वहाँ माउंट हॉली (न्यू जर्सी) की मस्जिद में एक सभा हुई। इसमें ज़्यादातर महिलाएँ शामिल थीं। इस सभा का विषय था "अमेरिकी समाज में बच्चों की इस्लामी शिक्षा"। इस पर बोलते हुए, जो कुछ मैंने कहा उसका सार यह था: मैंने कहा कि अगली पीढ़ी

की इस्लामी शिक्षा इस तरह नहीं हो सकती कि आप किसी मौलवी साहब को नियुक्त करें, जो रोज़ शाम को आकर बच्चों को 'इस्लामी पाठ' पढ़ाएँ या आप बच्चों के लिए कोई धार्मिक पत्रिका निकालें या उन्हें सांस्कृतिक रूप से कुछ चीज़ों की आदत डालने की कोशिश करें। इसका एकमात्र हल यह है कि अगर आप अपने बच्चों को इस्लामी बनाना चाहते हैं, तो सबसे पहले अपने घर को अध्यात्मिक बनाएँ।

आपके घर में दुनिया की बातें नहीं होनी चाहिए, बल्कि धर्म की चर्चा होनी चाहिए। घर का माहौल भौतिकता से रंगा हुआ नहीं होना चाहिए, बल्कि आख़िरत (परलोक) के रंग में रँगा होना चाहिए।

प्रशिक्षण शिविर

पैग़म्बर मोहम्मद ने कहा है: "तुममें से सबसे अच्छा वह है, जो अपने घरवालों के साथ बेहतर हो।" (इब्न माजा, हदीस न० 1977)। इसका मतलब यह है कि जो इंसान अपने घर के लोगों के साथ अच्छे से व्यवहार करेगा, वह बाहर वालों से भी अच्छा व्यवहार करेगा। घर हर व्यक्ति के लिए एक प्राकृतिक प्रशिक्षण स्थल है। घर के अंदर सीमित स्तर पर वे सारे अनुभव होते हैं, जो बाहरी समाज में बड़े स्तर पर होते हैं।

इसलिए जो व्यक्ति सीमित दायरे में बेहतर इंसान साबित होगा, वह बाहर के व्यापक दायरे में भी बेहतर इंसान बनकर रह सकेगा। एक व्यक्ति सरकारी नौकरी में था। उसका मानना था कि पत्नी को दबाकर रखना चाहिए। वह घर के अंदर रोज़ाना इसी सोच पर अमल करता था। वह हमेशा घर की महिला से सख़्त लहजे में बात करता और उनके साथ सख़्ती से पेश आता, ताकि वह उनके सामने दबकर रहें।

घर के प्रशिक्षण शिविर में जो उनका स्वभाव बना, वह वही लेकर दफ़्तर पहुँचे। यहाँ संयोग से उनकी बॉस भी एक महिला थीं। जान-बूझकर या अंजाने में, यहाँ भी उनका वही घरेलू स्वभाव जारी रहा। उन्होंने अपनी महिला अफ़सर के साथ भी वैसा ही व्यवहार किया, जैसा वह घर की महिला के साथ करते थे। शुरुआत में महिला अफ़सर उनके साथ ठीक थीं, लेकिन उनके अनुचित व्यवहार ने महिला अफ़सर को उसने नाराज़ कर दिया। नतीजा यह हुआ कि अफ़सर ने उनका रिकॉर्ड ख़राब कर दिया और उनका प्रमोशन रुक गया।

वह विभिन्न दफ़्तरी समस्याओं में फँस गए। सही सिद्धांत वही है, जो घर के अंदर और घर के बाहर दोनों जगह समान रूप से उपयोगी हो। यह शराफ़त का सिद्धांत है। आदमी को चाहिए कि वह घर के अंदर शराफ़त से रहे। बड़ों को इज़्ज़त दे और छोटो से प्यार करे। यह सिद्धांत घर के अंदर भी सफ़ल है और घर के बाहर भी। यह व्यक्ति की अपनी ज़रूरत है कि वह घर में संयम के साथ रहे और घर के बाहर भी।

नैतिकता की विरासत

पैग़म्बर मोहम्मद ने कहा है—

"किसी पिता की ओर से अपनी संतान के लिए सबसे अच्छी विरासत यह है कि वह उसे अच्छे अदब (संस्कार) सिखाए।"
(अल-मज्म अल-अवसत लिल-तबरानी, हदीस न० 3658)

अरबी भाषा में 'अदब' का मतलब अच्छा आचरण होता है। यह एक सच्चाई है कि पहले व्यक्ति के भीतर अच्छी सोच आती है, फिर

उसके भीतर अच्छा आचरण विकसित होता है। अच्छी सोच अच्छे आचरण की नींव होती है। इस दृष्टि से हदीस का मतलब यह है कि व्यक्ति अपनी संतानों में सही सोच (right thinking) को बढ़ावा दे। जिस व्यक्ति की सोच सही हो, उसका हर व्यवहार सही होगा। ऐसे व्यक्ति की सोच सही होगी, उसका आचरण सही होगा। उसका लेन-देन (dealings) सही होगा और उसकी योजनाएँ भी सही होंगी। संक्षेप में कहें तो व्यक्ति पूरी तरह से सकारात्मक सोच का धनी होगा और नकारात्मक सोच से बिलकुल ख़ाली होगा।

जिस व्यक्ति में यह अच्छे संस्कार होंगे, वह अपने हर मामले में एक बेहतर इंसान साबित होगा। ऐसा व्यक्ति, चाहे वह घर के अंदर हो या बाहर, अपने लोगों से व्यवहार करे या अंजान लोगों से—हर स्थिति में वह सही व्यवहार पर टिका रहेगा। उसकी सही सोच एक ऐसा कारक (factor) बनेगी, जो हर मौक़े पर उसे भटकने से बचाएगी। ऐसा व्यक्ति गंभीर और ज़िम्मेदार होगा। ऐसे व्यक्ति का चरित्र वह होगा जिसे 'प्रेडिक्टेबल कैरेक्टर— पूर्वानुमेय चरित्र' कहा जाता है। निस्संदेह, यह किसी व्यक्ति के लिए उसके माता-पिता की सबसे मूल्यवान विरासत है।

पिता का उपहार

यदि कोई पिता अपने बच्चों को संसारिक चीज़ें नहीं दे सकता, जैसे घर और संपत्ति, तो ऐसे पिता के पास अक्सर यह एहसास रहता है कि वह एक नालायक पिता साबित हुआ है।

वह सोचता है कि भले ही वह उनके पिता है, फिर भी वह अपने बच्चों के लिए एक अच्छी दुनिया नहीं बना पाया।

बच्चों के लिए पिता का यह एहसास कोई सकारात्मक भावना नहीं है। इसके विपरीत, सही भावना यह होनी चाहिए कि जो पिता अपने बच्चों को संसारिक चीज़ें दे सकता है, उसे इस बात के लिए आभारी होना चाहिए कि ईश्वर ने उसे देने के क़ाबिल बनाया। ईश्वर ने उसे हाथ-पैर दिए, कमाने की क़ाबिलियत दी और इस तरह वह अपने बच्चों को कुछ देने के क़ाबिल बन पाया।

लेकिन जो पिता अपने बच्चों को इस संसारिक चीज़ें नहीं दे सकता, उसके पास भी अपने बच्चों को देने के लिए एक बहुत बड़ी चीज़ होती है और वह है दुआ। वह अपनी दुआओं में यह कह सकता है कि, "हे ईश्वर, मैं अपने बच्चों का पिता हूँ, लेकिन मैं उन्हें वह चीज़ नहीं दे सका। तू मेरा और मेरे बच्चों का रब है। तू उन्हें वह चीज़ दे, जो मैं उन्हें नहीं दे सका। मेरे बच्चों के लिए मेरी यह दुआ क़बूल कर।"

जिसमें तूने इंसान को यह नसीहत दी है: "हे हमारे रब, हमें इस दुनिया में अच्छाई दे और आख़िरत (परलोक) में भी अच्छाई दे और हमें (नर्क की) आग के अज़ाब से बचा।" (2:201) अगर कोई पिता अपने बच्चों के लिए यह दुआ कर सकता है, तो उसने उन्हें सबसे बड़ी चीज़ दी। वह अपने आपको अपने बच्चों समर्पित करना चाहता था, लेकिन उसकी परिस्थितियों ने उसे इस क़ाबिल बनाया कि वह अपनी दुआओं के ज़रिये अपने बच्चों को रब के हवाले कर दे। ऐसा है जैसे उसने ख़ुद को न देकर ईश्वर का हाथ उनके सर पर रख दिया। वह उन्हें छोटी चीज़ देना चाहता था, लेकिन हालात ने उसे इस क़ाबिल बनाया कि वह अपने बच्चों को सबसे बड़ी चीज़ दे सके यानी ईश्वर, सारे जहान का मालिक।।

एक विरासत यह भी है

करीम बख़्श एक सीधे-सादे, धार्मिक व्यक्ति थे। गाँव की मामूली आमदनी पर गुज़ारा करते थे। 65 साल की उम्र में, जब वह अपने चार बच्चों को छोड़कर इस दुनिया से चले गए, तो उन्होंने उनके लिए कोई ख़ास जायदाद नहीं छोड़ी थी। उनकी मौत के बाद, उनके बड़े बेटे रहीम बख़्श शहर चले आए, ताकि अपने लिए कोई कमाई का ज़रिया ढूँढ़ सकें। शहर में उन्होंने थोड़ी-सी पूँजी के साथ एक कारोबार शुरू किया।

रहीम बख़्श के पिता ने उनके लिए कोई भौतिक विरासत नहीं छोड़ी थी, लेकिन सादगी, संतोष और बिना किसी से लड़े-झगड़े अपना काम करने की विरासत छोड़ी थी। यह विरासत रहीम बख़्श के लिए बेहद फ़ायदेमंद साबित हुई। उनकी सादगी और संतोष का नतीजा यह हुआ कि मामूली आमदनी के बावजूद वे लगातार तरक़्क़ी करते रहे। उनके झगड़े से बचने का स्वभाव भी उनके लिए बहुत मददगार साबित हुआ। हर कोई उनसे ख़ुश रहता और उन्हें हर किसी से सहयोग मिलता था। उनकी तरक़्क़ी की रफ़्तार भले धीमी थी, लेकिन वह बिना रुके लगातार आगे बढ़ती रही।

हालाँकि रहीम बख़्श का कारोबार मामूली था, लेकिन उनकी नेकदिली, निस्वार्थता और ईमानदारी ने उन्हें उनके समाज में इतना सम्मान दिलाया था, जैसे वे कोई बड़े रुतबे वाले व्यक्ति हों। उनके पास पूँजी बहुत कम थी, लेकिन लेन-देन में ईमानदारी और वादे के पक्के होने का नतीजा यह हुआ कि बाज़ार के बड़े-बड़े थोक व्यापारी उनसे कहते, "मियां जी, जितना चाहो माल ले जाओ, पैसों की चिंता मत करो, बाद में दे देना।" कभी-कभी ऐसा भी हुआ कि किसी से झगड़े की नौबत आ गई, लेकिन उन्होंने ख़ुद को चुप कर लिया। वह उस शरारती

व्यक्ति के ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं करते, बल्कि चुपचाप अपने काम में लगे रहते और उसके लिए दुआ करते रहते।

जब उनके दिल में कभी शैतान बुरी भावना डालने की कोशिश करता, तो उनके पिता का मासूम चेहरा उनके सामने आ जाता। उन्हें लगता कि अगर उन्होंने कोई ग़लत काम किया या किसी से झगड़ा किया, तो उनके पिता की आत्मा क़ब्र में बेचैन हो जाएगी। यह ख़्याल तुरंत उनके ग़लत इरादों को दबा देता और वे फिर उसी सकारात्मक (positive) राह पर चल पड़ता, जिस पर उनके पिता ने उन्हें छोड़ा था।

जैसे-जैसे उनका कारोबार बढ़ता गया, उन्हें और सहायकों की ज़रूरत महसूस होने लगी। उन्होंने अपने भाइयों को बुलाना शुरू किया। अंततः चारों भाई शहर में आकर बस गए। धीरे-धीरे उनके कारोबार के चार स्थायी विभाग बन गए। हर विभाग की ज़िम्मेदारी एक-एक भाई को दी गई। चारों भाई एक साथ रहते और साथ खाते-पीते थे। हालाँकि, कारोबार के मामले में हर भाई अपने-अपने विभाग को स्वतंत्र रूप से संभालता था।

कुछ दिनों बाद रहीम बख़्श को महसूस हुआ कि बड़े भाई होने के नाते वे ही कारोबार के मालिक हैं, इसलिए बाक़ी भाई अपना काम उतनी रुचि से नहीं करते, जितना कोई तब करता है, जब वह उसे अपना निजी काम समझता है। अब रहीम बख़्श के सामने दो विकल्प थे: या तो वे कारोबार को अपने क़ब्ज़े में लेकर बाकी तीनों भाइयों को अलग कर दें और परिणामस्वरूप हमेशा के लिए दुश्मनी मोल लें या फिर सब कुछ वैसे ही चलने दें, जब तक वही हो, जो अक्सर साझेदारी वाले कारोबारों में होता है।

यानी आपसी शिकायतें और बाद में कड़वी यादों के साथ कारोबार का बँटवारा। रहीम बख़्श ने कुछ दिनों तक सोचा और फिर सभी भाइयों को इकट्ठा करके सारी बात साफ़-साफ़ उनके सामने रख दी। उन्होंने

कहा, "ईश्वर के फ़ज़ल से अभी तक कोई बात बिगड़ी नहीं है। सबसे अच्छी बात यह होगी कि चारों भाई एक-एक कारोबार लें और सभी अपना-अपना कारोबार ख़ुद चलाएँ। इससे हमारे वालिद की रूह को सुकून मिलेगा और मुझे यक़ीन है कि इसमें हम सभी के लिए ज़्यादा बरकत होगी।" तीनों भाइयों ने कहा, "हम पर आपका एहसान हैं। जो भी आप फ़ैसला करेंगे, हमें मंज़ूर होगा।"

थोड़ी बातचीत के बाद यह तय हुआ कि लॉटरी निकालने का तरीक़ा अपनाया जाए। उसी वक़्त, लॉटरी निकालकर हर भाई को एक-एक कारोबार दे दिया गया। अब चारों भाई अपने-अपने कारोबार में लगे हुए हैं। हर एक अपने बच्चों को लेकर अपने-अपने काम में सुबह से शाम तक मेहनत करता है। चारों भाइयों के बीच पहले से भी ज़्यादा अच्छे रिश्ते हैं। हर कोई दूसरे की मदद के लिए हमेशा तैयार रहता है।

चारों ने अलग-अलग अपने घर बसा लिए हैं, लेकिन रहीम बख़्श अब भी वैसे ही 'बड़े भाई' हैं, जैसे पहले थे। एक भाई जो भी बात कह दे, दूसरा कभी उसे टालता नहीं। अगर किसी घर में कोई ज़रूरत हो, तो चारों घरों की औरतें और बच्चे मिलकर उसे ऐसे पूरा करते हैं, जैसे वह उनका अपना काम हो। अधिकतर पिता यह सोचते हैं कि उनके बच्चों के लिए सबसे बड़ी विरासत यही है कि वे उनके लिए धन और जायदाद छोड़कर इस दुनिया से जाएँ, लेकिन सच्चाई यह है कि सबसे ज़्यादा ख़ुशक़िस्मत औलाद वही होती है, जिनके पिता उन्हें उसूलों पर चलने वाली ज़िंदगी की विरासत देकर इस दुनिया से जाते हैं। वे अपनी औलाद को यह सबक़ देकर जाते हैं कि मेहनत पर भरोसा करो, बिना किसी से उलझे अपना काम करो, अपने जायज़ हक़ पर संतोष करो, वर्तमान के फ़ायदों से ज़्यादा भविष्य की संभावनाओं पर नज़र रखो और ख़्याली पुलाव पकाने के बजाय हक़ीक़त का सामना करो।

भौतिक विरासत से ज़्यादा बड़ी चीज़ नैतिक विरासत होती है, मगर बहुत कम पिता होते हैं, जो इस सच्चाई को जानते हैं।

लड़कियों की परवरिश

लड़कियों की परवरिश के संबंध में पैग़म्बर मोहम्मद के कथन इन शब्दों में है: "जिसकी तीन बेटियाँ हों, उसने उन्हें अच्छा व्यवहार सिखाया, उनकी शादी की और उनके साथ अच्छा बर्ताव किया, तो उसके लिए स्वर्ग है।" (सुनन अबू दाऊद, हदीस न० 5147)।

आम धारणा यह है कि यदि किसी पिता की कई बेटियाँ हों और कोई बेटा न हो, तो वह बेटियों को कम महत्त्व देता है। इस हदीस में इसी सोच का खंडन किया गया है। चाहे पिता के घर लड़का हो या लड़की, दोनों ही स्थितियों में पिता की ज़िम्मेदारी यह है कि वह अपने बच्चों को बेहतरीन शिक्षा दे और उन्हें ऐसी परवरिश दे, जो उनके जीवन को बेहतर ढंग से जीने में मददगार बने।

अक्सर पिता की प्रवृत्ति यह होती है कि वह अपनी संतान को जीवन की सभी सुविधाएँ उपलब्ध कराए। वह अधिक-से-अधिक कमाई करके उन्हें धन दे सके, मगर यह सोच सही नहीं है। बच्चों के लिए पिता का सबसे बड़ा उपहार धन नहीं, बल्कि शिक्षा है। पिता का कमाया हुआ धन बच्चों के लिए बिना मेहनत का पैसा होता है और ऐसा पैसा अक्सर इंसान को बिगाड़ देता है। सही तरीक़ा यह है कि इंसान अपनी संतान को शिक्षा दे और उन्हें इस योग्य बनाए कि वे ख़ुद मेहनत करके अपने जीवन को बेहतर बना सकें।

फ़ैमिली कल्चर का नुक़सान

वर्तमान समय में विशेष रूप से और सामान्य रूप से पूर्वी दुनिया के लोगों में एक ही संस्कृति प्रचलित है और वह फ़ैमिली कल्चर है। इसका मतलब है पैसा कमाना और परिवार की ज़रूरतों को पूरा करना। लोगों को सिर्फ़ यही एक मॉडल पता है, इसके सिवा किसी और मॉडल का उन्हें ज्ञान नहीं है।

इस फ़ैमिली कल्चर का सबसे बड़ा नुक़सान यह है कि यह वास्तव में परिवार को मूर्ख बनाना (befooling of family) बन चुका है। इसका नतीजा यह हुआ है कि लोगों की सोच का दायरा बहुत सीमित हो गया है। उनका दिमाग़ केवल अपनी भौतिक ज़रूरतों के सीमित दायरे में काम करता है। वे यह ज़रूरत नहीं समझते कि उन्हें इस सीमित दायरे से बाहर भी सोचना चाहिए।

उनके यहाँ किताबों का अध्ययन करने का माहौल नहीं होता। उनके यहाँ विचारों के गंभीर आदान-प्रदान (serious discussion) का रिवाज नहीं होता। उनके पास यह संस्कृति नहीं होती कि वे रिश्तेदारों के अलावा अन्य लोगों से मिलें और उनसे सीखने और लाभ उठाने की कोशिश करें। वे अपने घर से बाहर निकलते हैं तो या तो नौकरी के लिए, मनोरंजन के लिए या फिर ख़रीदारी के लिए। इन चीज़ों के अलावा उनके पास मानसिक विकास (intellectual development) का कोई विचार नहीं है।

इस फ़ैमिली कल्चर का नुक़सान यह है कि लोग भले ही बाहरी तौर पर भौतिक रूप से आरामदायक जीवन जी रहे हों, लेकिन असल में वे बौद्धिक पिछड़ेपन (intellectual backwardness) के शिकार हैं। यदि आप उनसे किसी गंभीर विषय पर बात करेंगे, तो तुरंत पता चल

जाएगा कि उनके अंदर कोई वैज्ञानिक सोच (scientific temper) नहीं है, वे दुनिया की हक़ीक़तों से अंजान हैं और जीवन के बड़े मसलों पर उनकी कोई राय नहीं है। देखने में वे इंसान लगेंगे, लेकिन असल में वे सिर्फ़ एक सजे-धजे जानवर (well-dressed animal) की तरह होंगे। पारिवारिक जीवन को इस तरह बनाया जाना चाहिए कि यह लोगों के बौद्धिक विकास (intellectual development) में मदद करे, न कि उनके मानसिक विकास के लिए एक स्थायी रुकावट बन जाए।

एक सामान्य कमज़ोरी

एक मुसलमान अपनी पत्नी साथ मिलने आया। एक घंटे की मुलाक़ात के दौरान मुझे लगा कि उसका अपनी पत्नी से कोई दिल का रिश्ता नहीं है। हालाँकि, इस दौरान उसके मोबाइल पर बार-बार उसके बच्चों के फ़ोन आते रहे। अपने बच्चों से वह इस तरह बात कर रहा था कि उससे पता चल रहा था कि उसे अपने बच्चों से गहरा दिली लगाव है।

मैंने उनसे कहा कि आपका मामला भी दूसरों की तरह एक नासमझ पिता का मामला है। आप जैसे लोगों का यह हाल है कि जो चीज़ें आपको वास्तव में मिली हुई हैं, उनका आप सही ढंग से इस्तेमाल नहीं करते और जो चीज़ें आपको नहीं मिल सकतीं, उन्हें आपने अपनी सबसे बड़ी चिंता बना रखी है। मैंने कहा कि आपके पास दो ऐसी चीज़ें हैं, जो वास्तव में आपके पास मौजूद हैं — एक, आपका ख़ुद का अस्तित्व और दूसरी, आपकी पत्नी। आपने अपनी ज़िंदगी में उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं की और पत्नी के मामले में आप उन्हें नज़रअंदाज़ कर रहे हैं, जिसके चलते वे मायूसी का शिकार हैं, वह अपनी ज़िंदगी का

कोई रचनात्मक (creative) किरदार नहीं ढूँढ़ पाईं। दूसरी तरफ़, आप अपनी सारी दिलचस्पियाँ अपने बच्चों से जोड़ चुके हैं, जबकि ये बच्चे हमेशा आपके पास रहने वाले नहीं हैं। आपका बेटा और आपकी बेटी दोनों आपको छोड़कर अपनी अलग ज़िंदगी बसाएँगे, वे किसी भी हाल में आपके काम नहीं आएँगे। आप को जो मिला हुआ है, उसे बर्बाद कर रहे हैं और जो नहीं मिलेगा, उस पर अपनी सारी ऊर्जा बेकार में लगा रहे हैं।

यह हाल आज कल लगभग हर इंसान का है। इस दौर में हर शख़्स 'खोने' का मामला बन रहा है। कोई भी इंसान सही मायनों में 'पाने' का मामला नहीं है। इंसान अपनी इस लापरवाही का एहसास अपनी उम्र के आख़िर में तब करता है, जब इस तबाही भरी ग़फ़लत की भरपाई का वक़्त उसके पास नहीं होता। इंसान को चाहिए कि वह जो हासिल हुआ है, उसे ही अपना गतिविधियों का केंद्र बनाए, न कि जो हासिल नहीं हुआ, उस पर ध्यान दे।

छोटा भगवान

अमेरिका की यात्रा के दौरान मेरी मुलाक़ात एक विवाहित महिला से हुई। उनके साथ दो छोटे बच्चे थे। पता चला कि यह महिला अपने पति से मतभेद के कारण अपने बच्चों के साथ अलग एक छोटे-से मकान में रहती हैं। मैंने कहा कि आज कल के दौर में एक अजीब बात हो रही है कि पति को अपने बच्चों से तो प्यार है, लेकिन उसे अपनी पत्नी से नफ़रत है। इसी तरह, पत्नी को अपने बच्चों से प्यार है, लेकिन अपने पति से नफ़रत। यह एक विरोधाभास है और प्रकृति के नियम के अनुसार, इस तरह की विरोधाभासी सोच (contradictory

thinking) और मानसिक विकास, दोनों एक साथ नहीं हो सकते। मैंने कहा कि आज कल यह हाल है कि पति और पत्नी के लिए उनका बच्चा मानो छोटा भगवान (little god) बन जाता है, लेकिन जिस पति या पत्नी के ज़रिये यह बच्चा पैदा हुआ है, उनसे दोनों में दूरी हो जाती है।

सफ़लता का मार्ग

एक सज्जन नौकरी करते थे। कुछ समय तक नौकरी करने के बाद उन्हें महसूस हुआ कि नौकरी से होने वाली आय बच्चों की तरक़्क़ी के लिए पर्याप्त नहीं है। इसीलिए उन्होंने नौकरी छोड़ दी और एक कारोबार शुरू किया, ताकि वे ज़्यादा कमा सकें और अपने बच्चों को ज़्यादा तरक़्क़ी दिला सकें, लेकिन असल में उन्हें कारोबार में वांछित सफ़लता नहीं मिली। नतीजतन, वे तनाव में आ गए। आख़िरकार, उन्हें कैंसर हो गया और बच्चों के लिए ज़्यादा पैसा कमाने से पहले ही वे इस दुनिया से चले गए।

इस तरह की घटना अलग-अलग तरीक़ों से कई लोगों के साथ घटित होती है, लेकिन यह सभी के लिए विनाशकारी होती है। ऐसे लोगों के लिए सही तरीक़ा यह है कि वे यथार्थवादी (realist) बनें। उन्हें अपने जीवन की योजना अपनी क्षमता के आधार पर बनानी चाहिए, न कि अपनी संतानों के बारे में अपनी महत्त्वाकांक्षाओं के आधार पर। बच्चों के भविष्य की योजना बनाना उन्हें ख़ुद पर छोड़ देना चाहिए। उन्हें ऐसा कभी नहीं करना चाहिए कि बच्चों के लिए ख़ुद को और अंततः अपने बच्चों को भी बर्बाद कर लें।

बच्चों की तरक़्क़ी की सबसे बड़ी गारंटी यह है कि उनके अंदर ख़ुद मेहनत करने की भावना पैदा हो, उनकी आंतरिक प्रेरणा जागृत हो, वे ख़ुद हालात को समझें और हालात के अनुसार अपने जीवन की रचना करें। तरक़्क़ी वही होती है, जो इंसान को उसकी ख़ुद की मेहनत से मिले। दूसरों की दी हुई तरक़्क़ी असली तरक़्क़ी नहीं होती।

इस तरह की इच्छा रखने वाले लोग अधिकतर असफ़ल होते हैं। इसका कारण क्या है? इसका कारण यह है कि वे अपने बच्चों से भावनात्मक लगाव के कारण उन चीज़ों की इच्छा करने लगते हैं, जो ईश्वर की योजना के अनुसार उन्हें मिलने वाली नहीं।। इंसान को चाहिए कि वह इस मामले में अपनी भावनाओं के आधार पर कोई फ़ैसला न करे, बल्कि एक यथार्थवादी व्यक्ति की तरह हालात पर विचार करे और प्रकृति के नियमों के प्रकाश में अपने कार्यों की योजना बनाए। यही इस सिद्धांत का अर्थ है कि— इस दुनिया में किसी इंसान को वही मिलता है, जो ईश्वर ने उसके लिए तय कर रखा है, न उससे अधिक और न उससे कम।

संतोष और विकास

कम आय वाले लोगों में मैंने अक्सर एक सामान्य प्रवृत्ति देखी है यानी ये लोग अक्सर इस चिंता में रहते हैं कि किसी-न-किसी तरह अपनी आय बढ़ाएँ, ताकि उनके बच्चों को अधिक आराम और सुविधाएँ मिल सकें। ऐसे ही एक सज्जन को सलाह देते हुए मैंने कहा कि यह ग़लत सोच है। यह मनोदशा व्यक्ति को कई तरह से नुक़सान पहुँचाती है, यहाँ तक कि उसके जीवन का मिला हुआ सुकून भी ख़त्म हो जाता है।

इसके विपरीत, सही दृष्टिकोण यह है कि भविष्य के विकास का मामला बच्चों पर छोड़ देना चाहिए। जो कुछ भी उसे मिल रहा है, उसी में संतुष्ट होकर जीवन जीने की कोशिश करनी चाहिए। यदि उसकी आय स्वाभाविक रूप से बढ़ती है, तो उसे इसे ईश्वर का इनाम मानकर ग्रहण करना चाहिए, लेकिन अपनी आय बढ़ाने के लिए अधिक प्रयास नहीं करना चाहिए। उसे अपनी अधिक आय की तैयारी अपने बच्चों को करनी चाहिए। बच्चों को शिक्षा देना, उन्हें हुनर सिखाना और उनके भीतर जीवन की समझ पैदा करना, यह सब उसके भविष्य के लक्ष्यों में होना चाहिए। उसका दो-सूत्रीय फॉर्मूला होना चाहिए— अपने लिए संतोष और बच्चों के लिए विकास।

जीविका का प्रश्न

क़ुरान में एक तथ्य इन शब्दों में बताया गया है: "और कोई नहीं जानता कि कल वह क्या कमाई करेगा और कोई नहीं जानता कि वह किस ज़मीन में मरेगा" (31:34)। इसी बात को एक हदीस में भी बयान किया गया है। इस हदीस का अनुवाद है: जिब्राईल (फ़रिश्ता) ने मेरे दिल में यह बात डाली कि तुम में से कोई भी इस दुनिया से नहीं जाएगा, जब तक कि वह अपनी रोज़ी पूरी नहीं कर लेता। इसलिए, हे लोगों, ईश्वर से डर कर चलो और अपनी कोशिशों में ख़ूबसूरती पैदा करो।"

(मुस्तदरक अल-हाकिम, हदीस न० 2136)।

क़ुरान की इस आयत और हदीस का अध्ययन करने से यह समझ में आता है कि इंसान की रोज़ी-रोटी का मामला उसके सृष्टिकर्ता द्वारा तय होता है, न कि उसके पिता द्वारा। आज के दौर में यह सच्चाई जगह-जगह दिखती है। लगभग हर जगह यह देखा जा रहा है कि पिता

अंधाधुंध कमाई करता है। उसकी कमाई और घर बनाने का मक़सद यह होता है कि उसके बच्चे आराम की ज़िंदगी गुज़ार सकें, लेकिन ज़्यादातर ऐसा होता है कि पिता की बनाई हुई दुनिया में बच्चों को रहने का नसीब नहीं मिलता। वह उसी दुनिया में जीता और मरता है, जो उसने ख़ुद बनाई थी। गहराई से देखा जाए तो एक पीढ़ी में ही ज़िंदगी का सारा नक़्शा बदल जाता है। पिता ने कुछ सोचा था और असल में कुछ और ही हुआ।

इस सामान्य अनुभव से पता चलता है कि पिता का काम यह नहीं है कि वह रोज़ी देने वाला (provider) बनने की कोशिश करे। पिता का असली काम यह है कि वह अपने बच्चों को जीवन की समझ दे। उन्हें जीवन का रहस्य बताए। उन्हें सृष्टिकर्ता की रचनात्मक योजना समझाए, न कि ख़ुद सृष्टिकर्ता की जगह ले। इसके अलावा पिता कुछ भी करे, लेकिन अंततः वही होगा, जो सृष्टिकर्ता ने तय किया है।

माता-पिता की ज़िम्मेदारी

हदीस की किताबों में एक हदीस आई है। इसका अनुवाद यह है: अबू हुरैरा से वर्णन है कि ईश्वर के पैगम्बर ने फरमाया: हर बच्चा सही स्वभाव पर पैदा होता है। फिर उसके माता-पिता उसे यहूदी बना देते हैं या उसे ईसाई बना देते हैं या उसे मजूसी बना देते हैं।

(सहीह अल-बुखारी, हदीस न० 1358)

इसका मतलब सिर्फ़ धार्मिक अर्थों में यहूदी, ईसाई और मजूसी बनाना नहीं है। यह अंतिम परिणाम है। असल में इसमें हर वह विकृति शामिल है, जो माता-पिता के कारण बच्चों में पैदा होती है। इसी तरह

दूसरी हदीसों में भी सामान्य शब्दों का प्रयोग हुआ है। उदाहरण के तौर पर एक हदीस यह है:

जाबिर बिन अब्दुल्लाह से वर्णन है:कि ईश्वर के पैगम्बर ने फरमाया— हर बच्चा सही फ़ितरत पर पैदा होता है, जब तक कि वह बोलना न शुरू कर दे। फिर जब वह बोलने लगता है, तो या तो वह शुक्रगुज़ार बनता है या नाशुक्रा। (मुसनद अहमद, हदीस न० 14805)।

बच्चे पैदा होते ही बोलना शुरू नहीं करते। वे कुछ समय बाद बोलते हैं। बोलने से पहले उनका संबंध उनकी जन्मजात प्रकृति से होता है और बोलने के बाद उनका संबंध उनके आसपास के माहौल से हो जाता है। जो कुछ उन्हें मिलता है, उस पर ईश्वर का शुक्र अदा करना और उसे किसी और से मिला तोहफ़ा समझना चाहिए, यह पहली शिक्षा उन्हें अपने माता-पिता से मिलती है। किसी को छोटा समझकर उसे तुच्छ समझना या किसी को बड़ा देखकर जलन करना, यह भी सबसे पहले उन्हें अपने माता-पिता से ही सीखने को मिलता है। इस तरह माता-पिता या तो अपने बच्चों को नेक इंसान बनाते हैं या उन्हें बुरे कर्मों की ओर ले जाते हैं। बच्चे का घर उसका पहला स्कूल होता है और उसके माता-पिता उसके पहले शिक्षक।

बच्चों का सुधार

एक महिला ने मुझसे कहा कि आपको बच्चों की परवरिश पर एक लेख लिखना चाहिए। आज कल के समय में बच्चों के सुधार की बहुत आवश्यकता है। मैंने कहा कि बच्चों के सुधार पर तो अनगिनत लेख लिखे जा चुके हैं। हर दिन बच्चों के सुधार पर भाषण दिए जाते हैं, लेकिन इसका कोई नतीजा नहीं निकलता। असल बात यह है कि बच्चों

के सुधार के मामले में लेख या भाषण की ज़रूरत नहीं है। असली ज़रूरत यह है कि माता-पिता अपने बच्चों के प्रति अपना व्यवहार बदलें। लगभग सभी माता-पिता अपने बच्चों के साथ लाड़-प्यार (pampering) का व्यवहार करते हैं और यही लाड़-प्यार बच्चों के बिगड़ने की असली वजह है। जब तक माता-पिता अपना लाड़-प्यार बंद नहीं करेंगे, बच्चों का कोई सुधार नहीं हो सकता। मेरी बातें सुनकर उस महिला ने कहा कि बच्चों के साथ सख़्ती भी तो नहीं की जा सकती। मैंने कहा कि मैंने आपसे बच्चों के साथ सख़्ती करने को नहीं कहा।

मैंने सिर्फ़ इतना कहा था कि बच्चों के साथ लाड़-प्यार करना बंद कर दीजिए। माता-पिता का यही रवैया बच्चों के बिगड़ने की असली जड़ है। आप लोग सोचते हैं कि अगर बच्चों को लाड़-प्यार नहीं किया, तो इसका मतलब सख़्ती करना है। माता-पिता अपने बच्चों के लिए इतने संवेदनशील होते हैं कि वे लाड़-प्यार न करने को सख़्ती समझ लेते हैं और इसलिए वे लाड़-प्यार को छोड़ नहीं पाते।

फिर मैंने कहा कि आप कितना भी लाड़-प्यार कर लें, बच्चों की माँगें कभी ख़त्म नहीं होतीं। बच्चे बराबर और ज़्यादा की माँग करते रहते हैं। इस वजह से माता-पिता यह सोचते हैं कि हमने अभी तक कुछ भी नहीं किया। हमने अभी तक बच्चों की ज़रूरतें पूरी नहीं की हैं। इस वजह से सभी माता-पिता इस अहसास में रहते हैं कि वे बच्चों को लाड़-प्यार नहीं दे रहे हैं। उनके दिमाग़ में लाड़-प्यार का एक ग़लत मापदंड होता है कि जब तक बच्चो की किसी इच्छा को वे पूरा नही करते, तब तक उन्हें नहीं लगता कि उन्होंने लाड़-प्यार किया है, लेकिन इच्छाओं के मामले में, चाहे बच्चा हो या बड़ा, दोनों की हालत ऐसी होती है कि उन्हें जो कुछ भी मिलता है, वह उनकी इच्छाओं से कम होता है। इसलिए हमेशा नई-नई माँगें चलती रहती हैं।

बच्चों में बिगाड़

एक सज्जन ने कहा कि आज कल माता-पिता अक्सर यह शिकायत करते हैं कि उनके बच्चे बिगड़ गए हैं। इसके लिए वे सबसे ज़्यादा टीवी को ज़िम्मेदार ठहराते हैं। उनका मानना है कि टीवी ने उनके बच्चों को बिगाड़ दिया है। उन्होंने मुझसे पूछा कि इस बारे में आपकी क्या राय है। मैंने कहा कि अगर यह पूरा मामला टीवी का है, तो माता-पिता अपने घर में टीवी क्यों रखते हैं? बच्चे ख़ुद जाकर टीवी नहीं ख़रीदते। माता-पिता ही बच्चों को ख़ुश करने के लिए टीवी लाकर घर में रखते हैं। इसलिए इस मामले में असली ज़िम्मेदारी माता-पिता की है, न कि बच्चों की।

सच तो यह है कि बच्चों के बिगड़ने का असली कारण लाड़-प्यार (pampering) है। माता-पिता की सोच यह होती है कि उनके बच्चों की हर इच्छा पूरी की जाए। जब बच्चे छोटे होते हैं, तो उनकी इच्छाएँ केवल खाने-पीने और कपड़े जैसी चीज़ों तक सीमित होती हैं। इसलिए छोटी उम्र में माता-पिता अपनी सोच की ग़लती को नहीं समझ पाते, लेकिन जब बच्चे बड़े हो जाते हैं, तो उनकी रुचियाँ बढ़ने लगती हैं। अब वे दोस्ती, सैर-सपाटा, क्लब और प्यार-प्रसंग जैसी चीज़ों की ओर बढ़ने लगते हैं। जब ऐसा होता है, तो माता-पिता उन्हें रोकते हैं, लेकिन बच्चे उनकी बात नहीं मानते। यह निस्संदेह माता-पिता की लापरवाही का नतीजा है।

छोटी उम्र में ही माता-पिता ने अपने बच्चों के मन में यह सोच पैदा कर दी कि उनकी हर इच्छा पूरी होनी चाहिए। जब वे बड़े हुए, तो यह स्वभाव और अधिक विकसित हो गया। अब वे अपनी इच्छाएँ पूरी करने के लिए उन चीज़ों की ओर बढ़ने लगे, जो माता-पिता को पसंद नहीं हैं।

लेकिन सवाल यह है कि बच्चों में 'मेरी इच्छा ही सब कुछ है' वाली मानसिकता किसने पैदा की? यह माता-पिता ने अपने लाड़-प्यार के ज़रिये ख़ुद पैदा की है। सच्चाई यह है कि इस मामले में माता-पिता प्यार के नाम पर बच्चों के साथ दुश्मनी का काम कर रहे हैं।

उलटी परवरिश

एक मुस्लिम व्यापारी की घटना है। उनकी बेटी ने अपनी किसी ज़रूरत के लिए उनसे पैसे माँगे। उस मुस्लिम व्यापारी ने बिना कुछ पूछे तुरंत अपनी जेब में हाथ डाला और जितने भी नोट उस वक़्त उनकी जेब में थे, सब निकालकर अपनी बेटी को दे दिए और कहा, "यह लो, तुम लोगों के लिए ही तो कमाते हैं।" यह कोई असाधारण घटना नहीं है। यही स्थिति लगभग सभी माता-पिता की है। वे ख़ुद मेहनत करते हैं, कठिनाई से कमाते हैं, लेकिन जब बात उनकी संतानों की आती है, तो उनका यह ख़्याल रहता है कि बच्चों को कोई तकलीफ़ न हो। वे ख़ुद तकलीफ़ सहते हैं और अपने बच्चों को हर प्रकार की सुविधा देते हैं, उनकी हर इच्छा पूरी करने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं, चाहे इसके लिए उन्हें कोई भी कीमत चुकानी पड़े।

माता-पिता का यही रवैया उनके बच्चों के विकास में सबसे बड़ी बाधा है। माता-पिता का यह रवैया बच्चों की उलटी परवरिश के बराबर है। जिस दुनिया में आख़िरकार उनकी संतानें प्रवेश करेंगी, वह हक़ीक़तों की दुनिया है। वहाँ का नियम यह है कि— जितनी मेहनत करोगे, उतना ही पाओगे।

लेकिन माता-पिता घर के अंदर अपने बच्चों में जो मानसिकता पैदा करते हैं, वह इसके ठीक उलट होती है। घर का माहौल बिना

मेहनत किए पाने का होता है, जबकि बाहर की दुनिया का नियम है — मेहनत करके पाना। यही वजह है कि आज कल के युवा, चाहे लड़के हों या लड़कियाँ, नकारात्मक मानसिकता के शिकार हो रहे हैं। उन्हें दुनिया के हर व्यक्ति से शिकायत होती है। जान-बूझकर या अंजाने में, उनका यह रवैया बन जाता है कि मेरे माता-पिता बहुत अच्छे हैं, बाकी सभी लोग बुरे हैं।

इस स्थिति ने आज की दुनिया में दो चीज़ों को ख़त्म कर दिया है— मेहनत के साथ अपना काम करना और लोगों के बीच शुभचिंतक बनकर रहना।

आराम से रहें बच्चों

जुलाई 1995 में मेरा मुरादाबाद का सफ़र था।। वहाँ एक सज्जन ने बताया कि जिन मुसलमानों के पास पैसा है, अगर उनसे पूछा जाए कि आप इतना पैसा क्यों जमा कर रहे हैं, तो उनका जवाब होता है, "ताकि बच्चे आराम से रहें"। मैंने कहा कि जो लोग अपने बच्चों के आराम के लिए धन-दौलत इकट्ठा करते हैं, वे असल में अपने बच्चों के साथ समझदारी नहीं कर रहे हैं। अनुभव बताता है कि बिना मेहनत से मिली हुई दौलत इंसान के नैतिक आचरण को बिगाड़ देती है। यह उसमें सतहीपन और यहाँ तक कि आवारगी भी पैदा कर देती है। बच्चों के साथ सबसे बड़ी भलाई यह है कि उन्हें उच्च शिक्षा दिलाई जाए और इसके बाद दूसरी ज़रूरत यह है कि उन्हें मेहनत के रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित किया जाए।

नकली प्यार

एक मुस्लिम लड़की अपने माता-पिता की इकलौती संतान थी। उसके माता-पिता ने धूमधाम से उसकी शादी की। इसके बाद वह विदा होकर ससुराल चली गई। वहाँ उसके यहाँ एक बच्चा भी पैदा हो गया, लेकिन दो साल बाद, वह अपने पति से झगड़कर अपने माता-पिता के पास लौट आई। उसने अपने माता-पिता से कहा कि मेरा पति बहुत सख़्त है और मैं उसके साथ नहीं रह सकती।

लड़की के माता-पिता ने उससे ज़्यादा सवाल-जवाब नहीं किए। जो कुछ लड़की ने कहा, उसे उन्होंने सही मान लिया। उन्होंने कहा, "बेटी, तुम चिंता मत करो। हमारे पास ईश्वर का दिया हुआ सब कुछ है। तुम यहाँ आराम से रहो, तुम्हें कहीं जाने की ज़रूरत नहीं है।" जब मेरी मुलाक़ात लड़की से हुई, तो मैंने उससे सच्चाई जानने के लिए कुछ सवाल किए। लड़की ने बताया कि उसका पति हर मामले में सख़्त है। मैंने उदाहरण पूछा, तो उसने बताया कि उसका पति उसे शॉपिंग के लिए नहीं ले जाता और आउटिंग का कोई प्रोग्राम नहीं बनाता। मैंने कहा, "यह तो बहुत अच्छी बात है। शॉपिंग का मतलब है पैसे की बर्बादी और आउटिंग का मतलब है समय की बर्बादी।"

आपका पति बहुत अच्छा करता है कि वह आपको इन बेकार चीज़ों से बचाता है। माता-पिता ने लड़की के साथ जो किया, वह प्यार था और पति ने जो किया, वह नेक नियत थी। यह एक सच्चाई है कि प्यार की तुलना में सच्ची भलाई ज़्यादा बड़ी चीज़ है, लेकिन ज़्यादातर लोग इस फ़र्क़ को नहीं समझते। इसीलिए वे प्यार करने वाले को अपना हमदर्द समझ लेते हैं, जबकि असली हमदर्द वह होता है, जो आपके साथ सच्ची भलाई करता है। प्यार केवल एक भावनात्मक

चीज़ है, जबकि भलाई एक पूरी तरह से तार्किक रवैया है। वह व्यक्ति बहुत ख़ुशकिस्मत है, जिसे अपनी ज़िंदगी में एक सच्चा भला चाहने वाला मिल जाए।

सद्भावना या दुर्भावना

एक पिता ने अपनी बेटी की शादी दूर किसी जगह कर दी। यह बेटी अपने मायके में ऐसे पली थी कि उसने कभी कोई काम नहीं किया था। उसके माता-पिता हमेशा उसकी ख़ुशी के लिए प्रयासरत रहते थे, ताकि उसे कोई तकलीफ़ न हो, लेकिन पिता को पता था कि ससुराल में ऐसा नहीं होने वाला। उन्होंने अपनी बेटी को विदा करते वक़्त कहा, "अब तुम जहाँ जा रही हो, वह तुम्हारे लिए एक अलग दुनिया होगी। मायके में तुम्हें जो आराम मिला, उसकी उम्मीद ससुराल में मत रखना।"

पिता ने अपनी समझ के अनुसार यह सलाह सद्भावना के भाव से दी थी, लेकिन हक़ीक़त में, यह दुर्भावना वाली सलाह थी। इसका मतलब यह था कि उनकी बेटी ससुराल में हमेशा नकारात्मक सोच के साथ रहेगी। वह हमेशा ख़ुद को वंचित महसूस करेगी और यह सोचेगी कि मेरे मायके के लोग बहुत अच्छे थे और मेरे ससुराल के लोग बहुत बुरे। मायके वालों के लिए उसके दिल में झूठा प्रेम और ससुराल वालों के लिए झूठी शिकायत भर जाएगी।

अपनी पूरी ज़िंदगी वह इस भावना के साथ बिताएगी कि उसकी शादी ग़लत हो गई। वह हमेशा मायके वालों को अच्छा और ससुराल वालों को बुरा समझेगी। आज कल लगभग हर माता-पिता अपनी

बेटियों के लिए इसी तरह की नकली सद्भावना दिखाते हैं, जो वास्तव में उनकी बेटियों के लिए एक स्थायी दुर्भावना बन जाती है। बेटी मायके की कंडीशनिंग के कारण कभी इस मामले को समझ नहीं पाती और माता-पिता उसकी इस कंडीशनिंग को और मज़बूत बना देते हैं, उसे ख़त्म नहीं करते।

सही यह है कि पिता या तो अपनी बेटी के साथ लाड़-प्यार (pampering) न करें या कम-से-कम विदाई के समय उसे यह बता दें कि जो हमने किया, वह अप्राकृतिक था। प्राकृतिक तरीक़ा वही है, जो तुम्हें ससुराल में मिलेगा।

भविष्य पर विचार करते हुए

एक सज्जन ने अपनी बेटी की शादी एक दूर जगह पर एक युवक से कर दी। बाद में पता चला कि उस युवक की आर्थिक स्थिति बहुत कमज़ोर है। उसका जो घर है, वह भी टूटा-फूटा है और समाज में उसका कोई ख़ास स्थान नहीं है। जब लोगों को इस शादी के बारे में पता चला, तो उन्होंने पिता को बुरा-भला कहना शुरू कर दिया। यहाँ तक कि कुछ लोगों ने यह भी कहा कि वह मानसिक रूप से ठीक नहीं है।

लेकिन पिता ने इस मामले में धैर्य का तरीक़ा अपनाया। उसने अपनी बेटी के लिए बराबर दुआ की। वह दुआ करता रहा कि "हे ईश्वर, मेरी ग़लती की भरपाई (compensate) कर दो, मेरी बेटी की मदद करो, उसे अपनी दया की छाया में रख लो।" इसके बाद इस बेटी के कुछ बच्चे हुए। ये बच्चे स्वस्थ और मेहनती निकले। उन्होंने अपनी मेहनत से पढ़ाई की और अच्छे अंकों से पास हुए। अपनी क़ाबिलियत

के बल पर उन्हें अच्छी नौकरी मिल गई। अब हालात बदल गए। बेटे बड़े होकर नया घर बना चुके थे। उनके पास गाड़ी और अन्य सुविधाएँ भी आ गईं। अपने अच्छे कर्मों से उन्होंने समाज में एक अच्छा स्थान हासिल कर लिया।

ऐसे उदाहरण हर समाज में मिलते हैं। ये उदाहरण यह बताते हैं कि इंसान को सिर्फ़ वर्तमान को देखकर कोई राय नहीं बनानी चाहिए; बल्कि उसे भविष्य पर नज़र रखनी चाहिए। इस दुनिया में कोई भी अभाव हमेशा के लिए नहीं होता। इस दुनिया में हर व्यक्ति के पास यह अवसर होता है कि वह मेहनत और क़ाबिलियत से तरक़्क़ी के रास्ते पर आगे बढ़ सके। वह वर्तमान की कमी को भविष्य में और बेहतर बनाकर पूरा कर सकता है।

सफ़ल शादी का राज़ यह नहीं है कि आप अपनी बेटी की शादी किसी अमीर आदमी से कर दें। इसी तरह, असफ़ल शादी का यह मतलब नहीं है कि आपकी बेटी की शादी किसी ग़रीब व्यक्ति से हो जाए। इस दुनिया में आज का अमीर कल का ग़रीब बन सकता है और आज का ग़रीब कल अमीर हो सकता है। जीवन में असली महत्त्व मेहनत और योजना का है, न कि अमीरी या ग़रीबी का।

छोटी-सी बात पर बहुत बड़ा फ़ैसला

सफ़ल जीवन का एक रहस्य यह है कि छोटी-छोटी बातों पर बड़ा फ़ैसला नहीं लिया जाए। सामूहिक जीवन में छोटी शिकायतें हमेशा होती रहती हैं। समझदार व्यक्ति वह होता है, जो इन छोटी शिकायतों को नज़रअंदाज़ कर दे, जबकि नासमझ व्यक्ति छोटी शिकायत पर ग़ुस्सा कर बैठता है और उसके आधार पर बड़ा निर्णय ले लेता है। इसी तरह

की एक प्रसिद्ध घटना 'संडे टाइम्स', लंदन के हवाले से नई दिल्ली के अंग्रेज़ी अख़बार 'टाइम्स ऑफ़ इंडिया' (17 अगस्त, 2009) में प्रकाशित हुई थी।

लीबिया के शासक मुअम्मर गद्दाफ़ी का 33 वर्षीय बेटा हैनिबल जिनेवा (स्विट्ज़रलैंड) गया। वहाँ वह एक होटल में ठहरा। उसके साथ उसकी पत्नी एलेन भी थी। एक बार ऐसा हुआ कि होटल की एक तुनिशियन नौकरानी मोना की किसी बात पर एलेन को ग़ुस्सा आ गया। एलेन ने उसे मारा और धमकी दी कि मैं तुम्हें होटल की खिड़की से बाहर फेंक दूँगी।

इस घटना की ख़बर स्थानीय पुलिस को हुई। पुलिस ने हैनिबल और एलेन को गिरफ़्तार कर लिया। हालाँकि उन्हें जल्द ही रिहा कर दिया गया, लेकिन जब इस घटना की ख़बर हैनिबल के पिता मुअम्मर गद्दाफ़ी तक पहुँची, तो उन्होंने इसे अपना अपमान समझा और वह बेहद ग़ुस्से में आ गए। उन्होंने स्विट्ज़रलैंड के ख़िलाफ़ कई कड़े क़दम उठाए—स्विट्ज़रलैंड से हवाई सेवा बंद करना और कई स्विस कंपनियों के लीबिया में स्थित कार्यालयों को बंद कर देना, आदि। यहाँ तक कि उन्होंने कहा: "अगर मेरे पास परमाणु बम होता, तो मैं स्विट्ज़रलैंड को नक्शे से मिटा देता!"

यह घटना एक छोटी शिकायत पर बेइंतिहा बड़ी कार्रवाई का एक उदाहरण है। इस प्रकार की कार्रवाई का परिणाम हमेशा उल्टा ही होता है। चाहे कोई आम आदमी हो या बड़ा आदमी, कोई भी इस तरह के क़दम के नकारात्मक परिणामों से नहीं बच सकता। जल्द या देर से, इंसान को अपनी ग़लती का एहसास हो ही जाता है, लेकिन बाद में उस ग़लती को सुधारना संभव नहीं होता। तलाक के मामलों से लेकर राष्ट्रीय युद्धों तक, इस तरह के उदाहरण हर जगह देखे जा सकते हैं।

औलाद की मोहब्बत में हद से बढ़ जाना

पैग़म्बर की एक हदीस में बताया गया है कि क़यामत के दिन सबसे अधिक शर्मिंदगी उसे होगी, जो दूसरे की दुनिया के लिए अपनी आख़िरत (मौत के बाद आने वाली दुनिया) बेच देगा।

यह हदीस आज के ज़माने में सबसे अधिक उन लोगों पर लागू होती है, जिनके बच्चे हैं। आज कल बच्चों वाले लोग अपने बच्चों को ही अपनी सबसे बड़ी चिंता(concern) मान बैठे हैं। हर किसी की यही हालत है कि वह अपने बच्चों के लिए जितना हो सके, दुनिया की दौलत कमाने में लगा हुआ है और अपनी आख़िरत के लिए कोई असली काम करने का उसके पास समय ही नहीं है।

आज के ज़माने में हर आदमी इस सच्चाई को भूल चुका है कि उसकी औलाद उसके लिए बस एक इम्तिहान है (क़ुरान:अल-अनफ़ाल, 8:28)। औलाद उसे इसलिए नहीं मिली कि वह सिर्फ़ अपने बच्चों को ख़ुश करने में लगा रहे या अपनी सारी मेहनत उनकी दुनिया की कामयाबी के लिए ख़र्च कर दे।

आज कल बहुत से लोग ऐसे हैं, जो ऊपर से तो धार्मिक लगते हैं और औपचारिक रूप से (formal) नमाज़-रोज़े की पाबंदी भी करते हैं, लेकिन असल में वे अपना सारा समय और अपनी सबसे बड़ी मेहनत केवल दुनिया कमाने में ख़र्च कर रहे हैं। सिर्फ़ इसलिए कि जब वे मरें, तो अपने बच्चों के लिए ज़्यादा-से-ज़्यादा दुनिया की दौलत छोड़कर जाएँ, लेकिन ऐसे लोग ख़ुद को धोखा दे रहे हैं। उनके पास ईश्वर को प्रस्तुत करने के लिए सिर्फ़ कुछ बाहरी रस्में हैं और जहाँ तक असली ज़िंदगी का सवाल है, उसे उन्होंने पूरी तरह से अपनी औलाद के लिए समर्पित कर दिया है। यह ईश्वर की आराधना नहीं है, बल्कि यह औलाद की आराधना है और यह सच्चाई है कि औलाद की आराधना किसी को

ईश्वर की अराधना का पुण्य नहीं दिला सकती। ईश्वर को समर्पण ज़िंदगी का एक हिस्सा नहीं होनी चाहिए, बल्कि सच्चा समर्पण वह है, जो इंसान की पूरी ज़िंदगी को अपने घेरे में लिए हो।

घर एक प्रशिक्षण स्थल है

एक हदीस के अनुसार, हज़रत मुहम्मद ने फरमाया: "तुम में सबसे अच्छा वही है, जो अपने घरवालों के लिए अच्छा हो और तुम में मैं अपने घरवालों के लिए सबसे अच्छा हूँ।" (इब्न माजा, हदीस न० 1977)

इसका मतलब यह है कि घर किसी समाज की एक बुनियादी इकाई है। जो कुछ बड़े पैमाने पर पूरे समाज में होता है, वही घर के अंदर छोटे पैमाने पर होता है। इंसान के अच्छे या बुरे होने का फ़ैसला उसके आपसी रिश्तों से होता है। हर घर उन अनुभवों का एक छोटा संस्थान है और हर समाज उन्हीं अनुभवों का एक बड़ा संस्थान।

हर औरत या मर्द जब अपने परिवार के साथ रहते हैं, तो उन्हें कभी सुखद अनुभव होता है और कभी अप्रिय अनुभव। कभी किसी बात पर उनके अंदर नफ़रत की भावनाएँ भड़कती हैं और कभी प्यार की भावनाएँ। कभी वे ख़ुशी का सामना करते हैं और कभी नाख़ुशी का। कभी उनके अहंकार को संतुष्टि मिलती है और कभी उनके अहंकार को चोट पहुँचती है। कभी वे स्वीकार्यता की स्थिति में होते हैं और कभी अस्वीकार्यता की। कभी उन्हें अपने अधिकार निभाने का मौक़ा मिलता है और कभी अधिकारों के इनकार का मौक़ा, इत्यादि।

घर के अंदर पेश आने वाली ये अलग-अलग परिस्थितियाँ हर मर्द और औरत के लिए अपनी तैयारी के मौक़े हैं। जो लोग ऐसा करते

हैं कि वे हमेशा अपने ईमान की जागरूकता को ज़िंदा रखते हैं, वे आत्म-मूल्यांकन करते हुए ज़िंदगी बिताते हैं और उन्हें हमेशा परलोक में जवाबदेही का एहसास होता है। ऐसे लोगों का हाल यह होगा कि जब भी उनके सामने उपरोक्त तरह का कोई मौक़ा आएगा, तो वे सतर्क हो जाएँगे और सही तरीक़े को अपनाएँगे।

जो मर्द और औरत अपने घर के अंदर इस तरह की होशमंद ज़िंदगी गुज़ारते हैं, उनके लिए उनका घर एक प्रशिक्षण स्थल बन जाएगा। उनके घर का माहौल उन्हें हर सुबह और शाम तैयार करता रहेगा। उनकी यह ज़िंदगी उनके लिए इस बात की गारंटी बन जाएगी कि जब वे घर से बाहर समाजी ज़िंदगी में आएँ, तो वे समाज में भी उसी तरह सही रास्ते पर चलने वाले इंसान साबित हों, जैसे वे अपने घर में होते है।

एक आदमी जो अपने घर के अंदर लड़ता-झगड़ता रहता है, वह इसी तरह की ज़िंदगी का आदी हो जाएगा। जब वह अपने घर से बाहर आएगा, तो यहाँ भी लोगों से झगड़ने लगेगा। अपने ऑफ़िस में, अपने कारोबार में, रोज़मर्रा की ज़िंदगी में वह दूसरों के साथ वैसा ही रहेगा, जैसे वह अपने घर में रहता है। इसका नतीजा यह होगा कि उसके घर के मामले भी बिगड़ेंगे और उसके बाहर के मामले भी। इसी तरह कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो अपने घर के अंदर तो बदतमीज़ी से रहते हैं, लेकिन जब बाहर आते हैं तो दूसरों के साथ उनका रवैया तहज़ीब और शाइस्तगी वाला हो जाता है। वे कोशिश करते हैं कि दूसरों की नज़र में अच्छे बने रहें; मगर यह एक पाखंड है और ईश्वर को पाखंड पसंद नहीं।

किसी मुसलमान की जो धार्मिक ज़िम्मेदारी है, वह सिर्फ़ इस तरह पूरी नहीं होती कि वह मस्जिद में पाँच वक़्त की नमाज़ पढ़ ले, रमज़ान के रोज़े रख ले और मक्का जाकर हज कर ले। इसके साथ ज़रूरी है कि लोगों के साथ उसका आचरण अच्छा हो। इंसानों के साथ सुलूक में वह ईश्वर के हुक्मों की पाबंदी करे और लोगों के बीच इस एहसास के साथ रहे कि उसे अपने हर कथनी-करनी का जवाब ईश्वर को देना है।

मौजूदा दुनिया की ज़िंदगी इम्तिहान की ज़िंदगी है। एक तरह की ज़िंदगी इंसान को स्वर्ग की तरफ़ ले जाती है और दूसरी तरह की ज़िंदगी उसे नर्क का हक़दार बना देती है। ज़िंदगी के इस इम्तिहान का संबंध घर के अंदर के मामलात से भी है और घर के बाहर के मामलात से भी।

आशावाद या यथार्थवाद

एक पिता को अपने बेटे से बहुत लगाव था। पिता के मन में काम की एक आदर्श अवधारणा थी। वह अपने बेटे को इस आदर्श काम के लिए तैयार करना चाहता था। इस उद्देश्य से उन्होंने अपने बेटे को उच्च शिक्षा दिलाई। उनकी सारी उम्मीदें अपने बेटे से जुड़ी हुई थीं। जब बेटा बड़ा हुआ और उसने अपनी शिक्षा पूरी की, तो पिता चाहता था कि उसका बेटा उसके पसंदीदा काम में लग जाए, लेकिन बेटे ने मना कर दिया। पिता ने बहुत कुछ समझाने की कोशिश की, लेकिन बेटे को समझ नहीं आया। आख़िरकार, बेटे ने अपने पिता से कह दिया — "बेटा जब बड़ा हो जाता है तो वह अपनी अक़्ल से काम करता है।"

अपने बेटे का यह जवाब सुनकर पिता इतना निराश हुआ कि वह मानसिक रोगी बन गया। उसका ब्लड प्रेशर बढ़ गया, लेकिन सच यह है कि इस मामले में पिता की ग़लती थी, न कि बेटे की। यह एक स्वाभाविक बात है कि हर बच्चा अक़्ल और समझ के साथ पैदा होता है। छोटी उम्र में जब वह अपरिपक्व (immature) होता है, तब वह अपने माता-पिता की बात सुनता है, लेकिन जब वह बड़ा होता है, तो उसकी समझ परिपक्व हो जाती है। उसके अंदर अज़ादाना सोच की क्षमता पैदा हो जाती है। वह अपनी अक़्ल से स्वतंत्र निर्णय लेने लगता है। ऐसी स्थिति में इस तरह के माता-पिता की सोच अप्राकृतिक होती है, जो कभी भी हक़ीक़त नहीं बन सकती।

माता-पिता अपने बेटे से बहुत प्यार करते हैं। प्रेम की भावना में, वे अपने बेटे को लेकर काफ़ी उम्मीदें रखने लगतें हैं। वे अपने बेटे से ऐसी उम्मीदें पाल लेते हैं, जो प्रकृति के नियमों के ख़िलाफ़ होती हैं। लगभग हर पिता इस तरह की ख़ुशफ़हमी से ग्रस्त होता है। इस तरह की ख़ुशफ़हमी कभी भी इस दुनिया में हक़ीक़त नहीं बन सकती। माता-पिता को यथार्थवादी (practical) होना चाहिए, ताकि वे अपने बच्चों के बारे में निराश न हों।

परिवार के सदस्यों का फ़ित्ना

हदीस की किताबों में परिवार के बारे में कई वर्णन आए हैं। उनमें से दो यहाँ नकल किए गए हैं:

हज़रत अब्दुल्ला बिन उमर द्वारा बताया गया है कि हज़रत मुहम्मद ने फरमाया: "अफ़सोस, हर अफ़सोस उस शख़्स के लिए जिसने अपने परिवार को अच्छी हालत में छोड़ा और ख़ुद बुरे हाल में अपने रब के पास पहुँचा।" (मुस्नद अल-शहाब अल-क़ादई, हदीस न० 314)।

यानी जो व्यक्ति अपने परिवार को अच्छी हालत में छोड़ता है और वह ख़ुद बुरी हालत में अपने रब के पास पहुँचता है, उसके लिए पूरी तबाही और बर्बादी है। दूसरी जगह इस तरह आया है : क़यामत के दिन एक शख़्स लाया जाएगा और कहा जाएगा कि उसके परिवार ने उसकी नेकियाँ (पुण्य) खा लीं।
(तख़रीज अल-अहादीस फी तफ़सीर अल-कश्शाफ़ लिलज़ैलई हदीस न०1357)।

क़दीम ज़माने में चंद ही लोग इस क़िस्म के होते थे, लेकिन मौजूदा ज़माने में इस पहलू से बिगाड़ की ये हालत है कि देखने में ऐसा मालूम

होता है, जैसे तमाम लोग इस तबाह कुन कमज़ोरी का शिकार हो गए हैं। इस कमज़ोरी का सबब परिवार का मोह है। लोग बेशक ईश्वर और इस्लाम का नाम लेते हैं, लेकिन उनकी मोहब्बतें सिर्फ़ अपने परिवार से होती हैं। लोगों की हालत यह है कि उनकी सबसे बड़ी फ़िक्र उनके परिवार होते हैं। वे ख़ुद को और अपने माल–जायदाद को अपने परिवार के लिए वक़्फ़ कर देते हैं। मौत ऐसे लोगों के लिए एक मजबूरन अलगाव (compulsive detachment) का सबब बनती है।

ऐसे लोग जब मरने के बाद ईश्वर के पास पहुँचते हैं तो उनके पास देने के लिए कुछ नहीं होता। यह निःसंदेह सबसे बड़ा नुक़सान है। हदीस के मुताबिक, यह दूसरों की दुनिया बनाने के लिए अपनी आख़िरत को तबाह करना है (सुनन इब्न माजा, हदीस न० 3966)। इसके अलावा, ये परिवार के सदस्य जिन्हें इंसान मरने के बाद अपना सब कुछ दे देता है, वे उससे इस तरह जुदा हो जाते हैं कि फिर कभी उससे मुलाक़ात नहीं होती।

परीक्षा का पेपर

यूपी का एक मुसलमान दिल्ली में आकर बस गया। उसने प्रॉपर्टी का कारोबार किया और इस कारोबार में काफ़ी धन कमाया, लेकिन उसके यहाँ कोई संतान नहीं थी। एक बार उसकी माँ दिल्ली आई। उन्होंने देखा कि उसका बेटा दिल्ली में एक बड़े घर में रहता है। दुनिया की हर चीज़ उसके पास है, लेकिन शादी को काफ़ी समय बीत जाने के बावजूद उसके यहाँ कोई संतान नहीं थी। उसकी माँ इस बात से काफ़ी परेशान थीं। वे अक्सर कहती थीं — “हाय मेरे बेटे की दौलत कौन लेगा।”

इस घटना से पता चलता है कि क़ुरान में बच्चों को फ़ित्ना क्यों कहा गया है। इसका कारण यह है कि लोग अपने बेटे को अपनी ही पहचान का विस्तार समझते हैं। उन्हें यक़ीन होता है कि उनकी कमाई उनके बाद ज़ाया नहीं होगी, बल्कि उनके बेटे के रूप में उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से मिलती रहेगी।

बच्चों के बारे में इसी सोच के कारण लोग उन्हें फ़ित्ना समझने लगते हैं। इस सोच के तहत जो मानसिकता बनती है, उसका सबसे बड़ा नुक़सान यह है कि इंसान मौत की गंभीरता से बेख़बर हो जाता है। मौत के बाद की स्थिति के बारे में वह ज़्यादा संजीदगी से नहीं सोचता। जान-बूझकर या अंजाने में, वह मौत और उसके बाद की हक़ीक़तों से अंजान हो जाता है।

बच्चों का वास्तविक महत्त्व यह है कि उनके माध्यम से मानव जाति का अस्तित्व और निरंतरता बनी रहती है। जहाँ तक धन की बात है, वह पिता के लिए भी परीक्षा का एक पेपर है और बेटे के लिए भी। अगर इस सोच के तहत धन को देखा जाए तो धन कभी समस्या नहीं बनेगा।

इस हक़ीक़त को एक हदीस में इस तरह बयान किया गया है कि किसी माता-पिता द्वारा अपनी औलाद को सबसे बेहतरीन तोहफ़ा यह है कि वह उसे तालीम और तरबियत के ज़रिये अच्छा इंसान बनाए।

(सुनन अल-तिर्मिज़ी, हदीस न० 1952)।

हाथी की पूँछ में पतंग

अक्सर माता-पिता मुझसे पूछते हैं कि वर्तमान समय में बच्चों की धार्मिक शिक्षा के लिए क्या किया जाए। मेरा जवाब हमेशा एक ही

रहता है— बच्चों की तालीम से पहले ख़ुद शिक्षित हो। मौजूदा समय में बच्चों के बिगड़ने का असली कारण बाहरी माहौल नहीं है, बल्कि घर का अंदरूनी माहौल है। घर का अंदरूनी माहौल कौन बनाता है, यह माता-पिता हैं, जो घर का माहौल बनाते हैं। जब तक घर के माहौल को सच्चे मायनों में अध्यात्मिक नहीं बनाया जाता, बच्चों में कोई सुधार नहीं हो सकता। मौजूदा समय का असली फ़ित्ना (प्रलोभन) माल है।

आज कल हर आदमी ज़्यादा-से-ज़्यादा माल कमा रहा है। इस माल का उपयोग माता-पिता के लिए सिर्फ़ एक है और वह है घर के अंदर हर तरह की सुख-सुविधा जुटाना और बच्चों की सभी भौतिक इच्छाओं को पूरा करना। मौजूदा समय में यह संस्कृति इतनी आम हो गई है कि शायद ही कोई घर इससे अछूता हो, चाहे वह धार्मिक व्यक्ति का हो या सेक्युलर व्यक्ति का।। माता-पिता के इस स्वभाव ने हर घर को भौतिकवाद का कारख़ाना बना दिया है। सभी माता-पिता अपने बच्चों के भीतर, जान-बूझकर या अंजाने में, दुनियावी मानसिकता बनाने के इमाम बने हुए हैं। इसके साथ ही सभी माता-पिता चाहते हैं कि उनके बच्चे परलोक में स्वर्ग से भी वंचित न रहें। इसी स्वभाव के बारे में एक उर्दू शायर ने कहा था — "रिंद के रिंद रहे, हाथ से जन्नत न गई।"

लेकिन यह सिर्फ़ एक ख़ुशफ़हमी है, जो कभी सच नहीं हो सकती। यह 'हाथी की पूँछ में पतंग बाँधना' जैसा है। आज कल के माता-पिता एक तरफ़ अपने बच्चों को 'भौतिक हाथी' बनाते हैं और दूसरी तरफ़ चाहते हैं कि इस हाथी की पूँछ में धर्म की पतंग बाँध दी जाए, लेकिन ऐसी पतंग का हाल सिर्फ़ यह होगा कि हाथी अपनी पूँछ हिलाएगा और पतंग उड़कर बहुत दूर चली जाएगी। माता-पिता को चाहिए कि अगर वे अपने बच्चों को अध्यात्मिक यानी आख़िरत-पसंद बनाना चाहते हैं तो उसकी कीमत अदा करें, वरना इस तरह की ढोंग-भरी बातें करना भी छोड़ दें।

हर घर भ्रष्टाचार की फैक्ट्री है

आज कल आमतौर पर ऐसा होता है कि हर घर में एक तरफ़ उसके बच्चे और उसका परिवार होता है, जिनकी तारीफ़ की जाती है और उनका ज़िक्र हमेशा सकारात्मक तरीक़े से किया जाता है। इसके विपरीत, जब भी दूसरों की चर्चा की जाती है तो वह नकारात्मक तरीक़े से होती है।

अपने बारे में सकारात्मक बातों और दूसरों के बारे में नकारात्मक बातों का प्रचार करना, यह संस्कृति इतनी आम हो गई है कि शायद ही कोई घर इससे मुक्त हो। समाज के नागरिक, घर में ही बनते हैं, लेकिन उपरोक्त संस्कृति ने घर को इस क़ाबिल नहीं बनाया है कि वह समाज को अच्छे नागरिक दे सके। हर घर में ऐसे मर्द और औरतें तैयार हो रहे हैं, जो अपने लोगों के बारे में सकारात्मक राय रखते हैं और दूसरों के बारे में नकारात्मक राय रखते हैं। जिन्हें अपने लोगों से मोहब्बत है और दूसरों से नफ़रत। जो अपने लोगों के प्रति सहनशील (tolerant) हैं और दूसरों के प्रति असहनशील (intolerant) बने हुए हैं। जिनके अंदर अपने लोगों को देने का मन है और दूसरों से सिर्फ़ लेने का मन। जो अपने लोगों को बरतर समझते हैं और दूसरों को कमतर। जो अपने लोगों की तरक़्क़ी से ख़ुश होते हैं और दूसरों की तरक़्क़ी देखकर जलते है। जो अपने लोगों की तकलीफ़ से फ़िक्रमंद होते हैं और दूसरों की तकलीफ़ देखकर उन्हें कोई चिंता नहीं होती, आदि।

इस सूरत-ए-हाल का यह नतीजा है कि सामाजिक मूल्यों की कल्पना ख़त्म हो गई है। अब एक ही चीज़ है, जो हर किसी की अकेली चिंता बनी हुई है और वह है ज़ाती मतलब। इस सूरत-ए-हाल ने हर किसी को ख़ुदगर्ज़ और शोषण करने वाला बना दिया है, किसी को कम और किसी

को ज़्यादा। यह सूरत-ए-हाल बहुत संगीन है। इसका सुधार जलसों और भाषणों से नहीं हो सकत। इसे ठीक करने का तरीक़ा सिर्फ़ यही है कि घरवाले अपने घर के माहौल को सुधारें। घर के माहौल को ठीक किए बिना इस संगीन सूरत-ए-हाल की ठीक होना मुमकिन नहीं है।

बच्चों को कष्ट

एक वरिष्ठ मुस्लिम व्यापारी से एक सज्जन ने पूछा कि भगवान ने आपको 95 साल की उम्र दी है यानी लगभग एक सदी। इस लंबे जीवन में आपने क्या सीखा और क्या अनुभव किया? इस सवाल के बाद वह दो मिनट तक चुप रहे। इसके बाद उन्होंने बड़े गंभीर अंदाज़ में कहा — कोई अनुभव नहीं। बस पैदा हुए। बड़े हुए तो व्यवसाय में लग गए। शादी की और बच्चे पैदा किए। बच्चों को व्यवस्थित किया। अब जीवन के अंत में बच्चों के दुख झेल रहे हैं और मौत का इंतज़ार कर रहे हैं।

आज कल हर घर की यही कहानी है। आज के समय में लगभग हर माता-पिता का यह हाल है कि वे अपने बच्चों को अपने सभी प्यार का केंद्र बनाते हैं। बच्चों का जीवन सँवारने के लिए वे सब कुछ करते हैं, लेकिन अंत में हर किसी की यही स्थिति होती है कि बच्चे बेवफ़ा निकलते हैं। वे अपने माता-पिता को छोड़कर अपनी स्वतंत्र ज़िंदगी बना लेते हैं। आज के दौर में माता-पिता की सेवा करना एक पुराना विचार बन चुका है। बच्चों की तरक़्क़ी को माता-पिता इस अफ़सोस के साथ देखते हैं कि जिस पेड़ को हमने मेहनत से उगाया था, उस पेड़ की छाया उन्हें नहीं मिली।

हदीस में कहा गया है कि एक समय आएगा, जब बच्चे अपने दोस्तों के साथ अच्छे संबंध रखेंगे और अपने माता-पिता के साथ

दुर्व्यवहार करेंगे। यह पैग़म्बर की हदीस मौजूदा दौर के लिए बिलकुल सही बैठती है। आज पूरी दुनिया में यह आमतौर पर हो रहा है। इस घटना का सबसे दुखद हिस्सा उन लोगों को झेलना पड़ता है, जो पूरी ज़िंदगी अपने बच्चों को ख़ुश करने में बिताते हैं और अंत में उन्हें सिर्फ़ दुख ही मिलता है। इसके अलावा, ऐसे माता-पिता उस हदीस के भी उदाहरण हैं, जिसमें कहा गया है कि सबसे बड़ा घाटा उस व्यक्ति का है, जो दूसरों की दुनिया बनाने के लिए अपनी आख़िरत (मौत के बाद आने वाली ज़िंदगी) को खो देता है।

क़ब्रिस्तान

हमारे संगठन से एक पढ़े-लिखे मुसलमान जुड़े हुए थे। उस समय उनके यहाँ कोई संतान नहीं थी, फिर उनके यहाँ बच्चे हुए। इसके बाद वे धीरे-धीरे मिशन से दूर होते गए। कुछ समय बाद उनसे मुलाक़ात हुई। मैंने उनसे पूछा कि आपने यहाँ का काम क्यों छोड़ दिया? उन्होंने कहा, "बच्चों की ज़िम्मेदारियाँ इतनी बढ़ गई हैं कि अब समय नहीं मिलता।"

आज के समय में लगभग हर व्यक्ति की यही स्थिति है। लोगों के लिए उनके बच्चे उनका क़ब्रिस्तान बन गए हैं। हर व्यक्ति के लिए उसके बच्चे ही उसकी एकमात्र चिंता का विषय (sole concern) हैं। हर व्यक्ति अपना पैसा, अपना समय, अपनी ऊर्जा, जो कुछ भी उसके पास है, सब कुछ अपने बच्चों के लिए समर्पित कर देता है। दूसरों के लिए उसके पास केवल दिखावटी हमदर्दी होती है और अपने बच्चों के लिए असली काम। यहाँ तक कि भगवान या भगवान के काम के लिए भी उसके पास सिर्फ़ शब्द होते हैं, उससे ज़्यादा कुछ नहीं।

आज आप जिस व्यक्ति से मिलेंगे, वह अपने बच्चों की चिंता कर रहा होगा, लेकिन वह ख़ुद अपने भविष्य के बारे में चिंतित नहीं होगा। यह वही स्थिति है जिसे हदीस में इस तरह बताया गया है कि दूसरों की दुनिया बनाने के लिए अपनी आख़िरत खो देना।

(सुन्नन इब्न माजाह, हदीस न० 3966)

इस मामले का सबसे दुखद पहलू यह है कि लोग अपने बच्चों के प्रेम में इतने डूबे हुए हैं कि वे इस पैग़म्बर की इस हदीस की मिसाल बन गए हैं— "किसी चीज़ का प्रेम आपको अंधा और बहरा बना देता है।"

(सुन्नन अबू दाऊद, हदीस न० 5130)

बच्चों का प्रेम उन पर इतना हावी हो गया है कि वे यह भी नहीं सोच पाते कि हम अपने बच्चों का भविष्य बनाने की चिंता में ख़ुद अपने भविष्य को नष्ट कर रहे हैं। इस वजह से लोगों की हालत यह हो गई है कि उनके पास महत्त्वपूर्ण कामों के लिए समय नहीं है। उदाहरण के लिए, धार्मिक अध्ययन, सच्चाई का आमंत्रण और परलोक को ध्यान में रखते हुए अपने मामलों की योजना बनाना, आदि।

दिखावटी ख़रीदारी

एक सज्जन मुझे अपने घर ले गए। मैंने देखा कि उनका घर विभिन्न क़िस्म के सामान से भरा हुआ था। पूरा घर एक डिपार्टमेंटल स्टोर जैसा लग रहा था। मैंने पूछा कि आपके घर में इतना सामान क्यों है? उन्होंने कहा, "जब मैं बाज़ार जाता हूँ और वहाँ कुछ देखता हूँ, जो मुझे पसंद आता है, तो मैं उसे ख़रीद लेता हूँ। यह देखने की ख़रीदारी है। अक्सर लोगों का यही हाल है कि वे चीज़ों को देखकर ख़रीदते हैं, चाहे वे उनके उपयोग में आएँ या नहीं।"

ख़रीदारी दो प्रकार की होती है—दिखावटी ख़रीदारी और ज़रूरत की ख़रीदारी। दिखावटी ख़रीदारी वह है, जो देखकर की जाती है। इसके विपरीत, ज़रूरत की ख़रीदारी यह है कि जब आपको किसी चीज़ की ज़रूरत हो, तो आप उसे लेने के इरादे से घर से निकलें और जहाँ वह मिलती हो, वहाँ जाकर उसे ख़रीद लें। दिखावटी ख़रीदारी, दूसरे शब्दों में उद्देश्यहीन ख़रीदारी है। यह अपने समय और धन को बर्बाद करने के समान है। यह वही चीज़ है जिसे क़ुरआन में धन की बर्बादी (अल-इसरा, 17:26) कहा गया है यानी बेवजह धन बर्बाद करना।। ज़रूरत की ख़रीदारी एक ज़िम्मेदाराना काम है, जबकि दिखावटी ख़रीदारी एक ग़ैर-ज़िम्मेदाराना काम।। किसी मर्द या औरत के पास जो संपत्ति है, वह ईश्वर की दी हुई है, वह ईश्वर की अमानत है।

जो पुरुष या स्त्री ईश्वर की दी हुई संपत्ति को फ़िज़ूल-ख़र्च करते हैं, वे ईश्वर की अमानत में ख़यानत कर रहे होते हैं। वे ऐसा काम करते हैं, जिसके लिए परलोक में उनकी कड़ी सज़ा होगी। संपत्ति को जायज़ ज़रूरत पर ख़र्च करना पुण्य का काम है। इसके विपरीत, यदि धन को बेवजह ख़र्च किया जाए तो वह ख़र्च करने वाले के लिए पाप बन जाता है। धन को ख़र्च करने में इंसान को बहुत सतर्क रहना चाहिए।

लाड़-प्यार का नुक़सान

मेरे पिता फ़रीदुद्दीन ख़ान की मृत्यु दिसंबर 1929 में हुई। उस समय मेरी उम्र करीब 6 साल थी। मेरे पिता अपने सभी बच्चों में मुझे सबसे ज़्यादा चाहते थे। वे मुझे लाड़-प्यार (pampering) से रखते थे। इसकी वजह से मैं बहुत शरारती हो गया था और अक्सर बचकानी शरारतें किया करता था। मेरे चाचा शेख़ मुहम्मद कामिल इस पर नाराज़ होते

थे। वे मेरे पिता से कहते थे कि—तुम अपने बेटे को बिगाड़ दोगे। लेकिन मेरे बचपन में ही मेरे पिता का देहांत हो गया। मेरी माँ ज़ेब अल-निसा (मृत्यु 1985) बताती थीं कि पिता के रहते मैं बहुत बोलता था, लेकिन उनके देहांत के बाद अचानक मैं पूरी तरह बदल गया। मेरी शरारतें ख़त्म हो गईं और मैं चुप रहने लगा। यह मेरी ज़िंदगी का एक बड़ा मोड़ था। अगर मेरे पिता ज़्यादा समय तक ज़िंदा रहते, तो मैं यक़ीनन वही बिगड़ा हुआ बच्चा बनता, जिसे लोग लाड़-प्यार में बिगड़ा बच्चा (spoilt and pampered child) कहते हैं। बाद में मेरी ज़िंदगी में जो गंभीरता और हक़ीक़त-पसंदी आई, वह सीधे तौर पर मेरी अनाथ होने का परिणाम थी।

जब इंसान का जन्म होता है तो शुरू में वह अपने माता-पिता के साथ होता है, लेकिन यह अवधि अस्थायी होती है। उसे अपनी बाकी ज़िंदगी माता-पिता के माहौल से बाहर, दूसरों के बीच बितानी पड़ती है। माता-पिता अपने बच्चों से लाड़-प्यार करते हैं। इस लाड़-प्यार का नतीजा यह होता है कि बच्चा जाने-अंजाने में समझने लगता है कि जो मुझसे लाड़ करता है, वही मुझे प्यार करता है, लेकिन जब बच्चा घर से बाहर जाता है, तो उसे दूसरे लोगों से वैसा लाड़-प्यार नहीं मिलता। अब वह दुनिया से बेज़ार हो जाता है। यह स्थिति महिलाओं और पुरुषों को शिकायत की मानसिकता में डाल देती है, जबकि सही तो यह होता कि लोगों में दूसरों के प्रति प्रेम और सम्मान के भाव पनपें।

बच्चों की परवरिश

हदीस की विभिन्न किताबों में एक हदीस आई है। हदीस के शब्द कुछ इस तरह हैं: हज़रत मुहम्मद ने फ़रमाया: पिता की ओर से अपने

बेटे के लिए सबसे अच्छा तोहफ़ा यह है कि वह उसे अच्छे आचरण सिखाए। (हसन, सुनन अल-तिर्मिज़ी, हदीस न० 1952)।

इस हदीस में ज़ाहिर तौर पर सिर्फ़ पिता का ही ज़िक्र है, मगर इसका मतलब माता-पिता दोनों हैं। साथ ही, यहाँ आचरण का मतलब शिक्षा और प्रशिक्षण के सभी पहलुओं से है, चाहे वे धार्मिक हों या सांसारिक।

माता-पिता स्वाभाविक रूप से अपने बच्चों से असाधारण प्रेम करते हैं। इस हदीस में बताया गया है कि इस प्रेम का सबसे अच्छा उपयोग क्या होना चाहिए। वह यह है कि माता-पिता अपने बच्चों को जीवन के अच्छे संस्कार सिखाएँ। उन्हें अच्छे इंसान बनाकर दुनिया के मैदान में भेजें। अक्सर देखा गया है कि माता-पिता अपनी मुहब्बत का उपयोग इस तरह करते हैं कि वे बच्चों की हर इच्छा पूरी करने में लगे रहते हैं। वे सोचते हैं कि बच्चे की हर इच्छा को पूरा करना ही सबसे बड़ी मुहब्बत है, लेकिन यह बच्चों के हित में नहीं है।

एक छोटा बच्चा अपनी इच्छाओं के अलावा और कुछ नहीं जानता। उसकी सोच बस यही होती है कि उसके मन में जो इच्छा आए, वह तुरंत पूरी हो जाए, लेकिन यह बचकानी सोच है, क्योंकि सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बच्चा एक दिन बड़ा होगा। वह बड़ा होकर दुनिया के मैदान में उतरेगा। जीवन के इस अगले चरण में सफ़ल होने के लिए उसे जीवन के उसूल सीखने की ज़रूरत है। शिक्षा और प्रशिक्षण की शुरुआत तभी से करनी चाहिए, जब बच्चा बहुत छोटा हो, ताकि यह आदत उसकी ज़िंदगी का हिस्सा बन जाए। जीवन के आचरणों के तीन मुख्य पहलू हैं: धर्म, नैतिकता और अनुशासन।

धर्म के अनुसार बच्चे का प्रशिक्षण उसके जन्म के तुरंत बाद शुरू हो जाता है यह काम माता-पिता दोनों को करना चाहिए। नैतिक शिक्षा

के तहत हर मौक़े पर बच्चे को सिखाया जाए। अगर वह ग़लती करे, तो उसे रोका जाए और अगर ज़रूरत हो तो उसे चेतावनी दी जाए। अगर भाई-बहन आपस में लड़ें, तो उन्हें तुरंत समझाया जाए। अगर कभी बच्चा झूठ बोले, किसी को गाली दे या किसी की चीज़ चुराए, तो सख़्ती से उसे रोका जाए। यह सब चीज़ें बचपन से ही सिखानी चाहिए, ताकि ये आदतें उसकी ज़िंदगी का स्थायी हिस्सा बन जाएँ।

अनुशासन के मामले में भी यही तरीक़ा अपनाना चाहिए। बच्चे को समय का पाबंद होना सिखाया जाए। चीज़ों को सही जगह पर रखने की आदत डालनी चाहिए। खाने-पीने का समय तय हो। अगर बच्चा सड़क पर कोई कागज़ या प्लास्टिक फेंक दे, तो उसे तुरंत उठवाया जाए। शोर करने से रोका जाए और उन सभी चीज़ों से दूर रहने की नसीहत की जाए, जिनसे दूसरों को परेशानी हो।

बच्चे की सही शिक्षा के लिए माता-पिता को अपनी जीवनशैली को उस तरह से ढालना होगा, जैसा वे अपने बच्चे से उम्मीद करते हैं। अगर आप अपने बच्चे से कहते हैं कि 'झूठ मत बोलो', लेकिन जब कोई व्यक्ति दरवाज़ा खटखटाता है, तो आप बच्चे से यह कहने को कहते हैं कि 'घर पर नहीं हैं', तो बच्चे को झूठ बोलने से रोकना बेकार होगा। अगर आप ख़ुद सिगरेट पीते हैं और बच्चे के सामने धूम्रपान के ख़िलाफ़ भाषण देते हैं, तो वह बेईमानी होगा। अगर आप वादा पूरा नहीं करते और फिर अपने बच्चे से कहते हैं कि हमेशा अपना वादा निभाओ, तो आपकी सलाह का कोई असर नहीं होगा।बच्चे अपने माता-पिता को आदर्श मानते हैं। उसी तरह, बड़े बच्चे छोटे बच्चों के लिए आदर्श होते हैं। अगर माता-पिता और बड़े बच्चे सही रास्ते पर हों, तो बाक़ी बच्चे भी अपने आप सही दिशा में चलने लगते हैं।

नैतिक ज़हर

6 जनवरी, 1990 को दिल्ली (शकरपुर) में एक दर्दनाक घटना घटी। कुछ छोटे बच्चे मैदान में खेल रहे थे। वहाँ एक तरफ़ कूड़े का ढेर लगा हुआ था। वे खेलते-खेलते उस कूड़े के ढेर तक पहुँच गए। वहाँ उन्हें एक ज़हरीली चीज़ पड़ी हुई मिली। उन्होंने अंजाने में इसे उठाकर खा लिया। परिणामस्वरूप, दो बच्चों की तुरंत मौत हो गई और आठ बच्चों को गंभीर हालत में जय प्रकाश नारायण अस्पताल में भर्ती कराना पड़ा। ये बच्चे दो से पाँच साल के थे।

टाइम्स ऑफ़ इंडिया (7 जनवरी, 1990) ने पहले पन्ने पर यह ख़बर छापी। ख़बर के अनुसार, बच्चों में से एक को वहाँ एक छोटा पैकेट मिला, जिसमें लगभग डेढ़ सौ ग्राम सफेद रंग का पाउडर था। उन्होंने ग़लती से इसे चीनी समझ लिया और आपस में बाँटकर खा लिया।। इसे खाने के कुछ ही मिनट बाद उनके होंठ नीले पड़ गए।

भौतिक दृष्टि से यह कुछ बच्चों की ही घटना है, लेकिन नैतिकता के दृष्टिकोण से देखें तो आज यही स्थिति सभी इंसानों की है। आज के संसार में सभी इंसान नैतिक रूप से ऐसे भोजन कर रहे हैं, जो उनकी इंसानियत के लिए ज़हर साबित हो रहा है और उन्हें अनंत विनाश की ओर ले जा रहा है।

झूठ, दुष्टता, रिश्वत, अभिमान, ईर्ष्या, आरोप, क्रूरता, हड़पना, बेईमानी, वादा-ख़िलाफ़ी, द्वेष, सिद्धांतहीनता, दुर्व्यवहार, स्वार्थ, अनादर, ग़लती को न मानना, कृतज्ञता को भूलना, स्वार्थ, प्रतिशोध, उकसावा, अपने लिए एक चीज़ पसंद करना और दूसरे के लिए कुछ और पसंद करना—ये सारी चीज़ें नैतिक अर्थ में ज़हरीला भोजन हैं। आज सभी लोग इन चीज़ों को मीठी चीनी समझकर खा रहे हैं, लेकिन

वह समय दूर नहीं, जब इनका ज़हरीलापन प्रकट होगा और फिर इंसान अपने आपको ऐसी हालत में पाएगा, जहाँ कोई उसकी फ़रियाद सुनने वाला नहीं होगा और न ही उसका कोई इलाज करने वाला।

एक उदाहरण

रेडियो पर एक कार्यक्रम आता है, जो केवल महिलाओं के लिए है। इसमें महिलाओं से संबंधित विभिन्न विषयों पर चर्चा होती है। इसी प्रोग्राम के तहत, एक दिन माँ और उसके बच्चों के बीच संबंधों के विषय पर चर्चा की गई। कई माताओं ने इस पहलू से अपने अनुभवों को साझा किया। उदाहरण के लिए, एक माँ ने कहा कि मेरे दो बच्चे हैं। एक बेटा और एक बेटी। मैं एक कामकाजी महिला हूँ। मुझे अपने काम के लिए रोज़ाना घर से बाहर जाना पड़ता है। जब मैं बाहर जाती हूँ तो अपने बच्चों से सख़्ती से कहकर जाती हूँ कि देखो, 'यह करना और वह नहीं करना।' फिर उसने हंसते हुए कहा कि मेरी बेटी कहती है — 'मम्मी, आप तो हिटलर मम्मी हो।'

ये बातचीत टेलीफ़ोन पर हो रही थी। महिला रेडियो एंकर ने कहा कि इसका मतलब है कि आप अपने बच्चों को आदेश देती हैं। उक्त महिला ने तुरंत कहा, नहीं-नही, मैं आदेश नहीं देती, लेकिन उक्त महिला ने जो बात अपने बच्चों के बारे में कही, वह निस्संदेह आदेश देने जैसी ही थी। इस बात की पुष्टि उनकी अपनी बेटी की टिप्पणी से होती है। इसके बावजूद, उक्त महिला ने कहा नहीं-नहीं। यही आज के समय में लगभग सभी महिलाओं और पुरुषों का हाल है। वे एक बात कहेंगे और जब उनसे आगे पूछा जाएगा तो वे तुरंत शब्द बदलकर कह देंगे कि नहीं, मेरा यह मतलब नहीं था। यह भी झूठ का एक प्रकार है।

साधारण झूठ अगर खुला झूठ होता है तो यह एक छिपा हुआ झूठ है। इस प्रकार का झूठ किसी भी व्यक्ति के लिए बेहद विनाशकारी होता है। यह इंसान के अंदर एक कमज़ोर व्यक्तित्व पैदा करता है। जिन लोगों में कमज़ोर व्यक्तित्व होता है, उनका मानसिक विकास नहीं हो पाता। ऐसे लोगों के अंदर स्वर्गीय चरित्र का निर्माण नहीं हो सकता। परलोक में ऐसे कमज़ोर चरित्र वाले लोग, ईश्वर के पड़ोस में जगह पाने से वंचित रहेंगे। खुला हुआ झूठ अगर हराम (वर्जित) है, तो छिपा हुआ झूठ मानव चरित्र के लिए बेहद घातक है।

बच्चों से प्रेरणा

एक सज्जन को सिगरेट की लत थी और वह रोज़ाना तीन पैकेट सिगरेट पी जाते थे। "सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है", "सिगरेट पीना अपनी कमाई को आग लगाना है"। ऐसी कोई भी वजह उन्हें धूम्रपान छोड़ने के लिए प्रेरित नहीं कर पाई। यहाँ तक कि वह अपने दोस्तों को भी सिगरेट ज़बरदस्ती सिगरेट पिलाते थे। चाय पीने के बाद सिगरेट का कश लेना उनके लिए इतना ज़रूरी था कि वे अपने दोस्तों से कहते, "जो आदमी चाय पीकर सिगरेट न पिए, उसे चाय पीने का कोई हक़ नहीं।"

लेकिन एक छोटी-सी घटना ने उनकी प्रिय सिगरेट को उनसे छीन लिया। सिगरेट के टुकड़े, जो वह पीने के बाद फेंकते थे, उनका तीन साल का बेटा फ़ारूक़ कैसर उन्हें उठाकर अपने मुँह में लगाकर पीने लगता था। मलिक अब्दुश शुकूर उसे मना करते थे, पर वह नहीं मानता था। एक दिन जब बच्चे की माँ ने सख़्ती से बच्चे को मना किया, तो बच्चे ने कहा, "अब्बा भी तो पीते हैं।" अब्दुश शुकूर साहब ने जब यह

सुना, तो उन्हें बड़ा झटका लगा। हालाँकि वे दोस्तों के सामने अपनी धूम्रपान की लत पर गर्व करते थे, लेकिन वे जानते थे कि सिगरेट पीना एक बुरी आदत है, जो न सिर्फ़ सेहत और पैसों का नुक़सान करती है, बल्कि वह चरित्र को भी बिगाड़ती है। जब कोई उनसे धूम्रपान छोड़ने के लिए कहता, तो वह उसके ख़िलाफ़ तर्कों का अंबार लगा देते, लेकिन इन तर्कों की सच्चाई यही थी कि वह अपनी 'लत' को छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे और अपनी ग़लती मानने के लिए भी नहीं। इसलिए वे तर्कों का सहारा लेकर ख़ुद को सही साबित करते थे। वे इसे ज़रूरी ही नहीं समझते थे कि सिगरेट छोड़ने के तर्क पर गंभीरता से विचार करें।

लेकिन जब सिगरेट का सवाल बच्चे की ज़िंदगी का सवाल बन गया तो वे अचानक गंभीर हो गए। उनके दिमाग़ से सारे पर्दे हट गए, जिन्होंने एक साधारण सच्चाई को समझना उनके लिए नामुमकिन बना दिया था। जो व्यक्ति मज़बूत तर्कों के आगे झुकने को तैयार नहीं था, वह एक बच्चे के सरल शब्दों के आगे पूरी तरह से समर्पण कर दिया। "अगर मैं ख़ुद सिगरेट पीता रहूँ, तो मैं अपने बच्चे को सिगरेट पीने से नहीं रोक सकता" उन्होंने सोचा। बच्चे का यह कहना, "अब्बा भी तो पीते हैं", उनके लिए ऐसा हथौड़ा साबित हुआ, जिसकी चोट को वे सहन नहीं कर सकते थे। बच्चे के यह शब्द सुनकर उन्हें गहरा झटका लगा। उन्होंने एक पल के भीतर वह फ़ैसला कर लिया, जिसके लिए उनके दोस्तों की महीनों और सालों की कोशिश भी नाकाम साबित हुई थी। यह रमज़ान का महीना था। उन्होंने तय कर लिया कि वे सिगरेट पूरी तरह छोड़ देंगे। उन्होंने न केवल अगले दिन सिगरेट नहीं पी, बल्कि हमेशा के लिए धूम्रपान छोड़ दिया।

उन्हें सिगरेट से बहुत प्यार था, लेकिन वह अपने बेटे से उससे भी ज़्यादा प्यार करते थे। उन्होंने अपने बेटे की ख़ातिर सिगरेट छोड़ दी। इसी तरह हर इंसान को अपने हित और स्वार्थ से प्यार होता है। सच्चा

इस्लाम यही है कि इंसान को ईश्वर से इतनी मुहब्बत हो कि वह उसकी ख़ातिर दुनिया के स्वार्थों और फ़ायदों को क़ुर्बान कर दे।

मेरी मुलाक़ात अमेरिका में रहने वाले एक मुस्लिम से हुई। उन्होंने कहा कि हमें अपने बच्चों के बारे में यह चिंता रहती है कि हमारे बाद उनके धार्मिक भविष्य का क्या होगा। उन्होंने बताया कि हमारे बच्चे सेक्युलर स्कूलों में पढ़ते हैं, लेकिन हम घर पर उनकी धार्मिक शिक्षा देने की भी कोशिश करते हैं। अमेरिका में इसे होम-स्कूलिंग कहा जाता है।

मैंने कहा कि जब आपने अमेरिका में रहने का फ़ैसला किया, तो आपको यह समझना चाहिए था कि आप अपने बच्चों को यहाँ की संस्कृति से नहीं बचा सकते। इस सांस्कृतिक बाढ़ का सामना होम-स्कूलिंग के ज़रिये करना वैसा ही है, जैसे कागज़ की दीवार से बाढ़ को रोकने की कोशिश करना।

अनुभव बताता है कि शायद ही कोई ऐसा बच्चा हो जिसे देखकर यह कहा जा सके कि होम-स्कूलिंग का तरीक़ा सफ़ल रहा हो। ऐसी स्थिति में सही रास्ता यह है कि एक तरफ़ घर के माहौल को बदला जाए और दूसरी तरफ़ बच्चों में एक प्रेरणादायक सोच विकसित की जाए—

घर में सादगी और बच्चों में प्रेरणादायक सोच पैदा किए बिना इस सांस्कृतिक बाढ़ का सामना करना संभव नहीं है।

एक अलग तरह से सक्षम व्यक्ति

अक्टूबर 2000 में मैंने भोपाल की यात्रा की। उस दौरान मैंने जो चीज़ें देखीं, उनमें से एक कल्याण संस्था भी थी, जो दिव्यांग बच्चों के लिए स्थापित की गई थी। उसका नाम है शुभ विकलांग शिव समिति।

यह संस्था 1980 में स्थापित हुई थी। मैंने उन बच्चों को देखा, जिनकी संख्या 63 है, जिसमें हिंदू और मुस्लिम दोनों बच्चे शामिल हैं। मैंने कई बच्चों से बात की, दो बच्चों से बीच की बातचीत यहाँ उल्लेखित है।

मैंने संतोष चौरसिया (14 वर्ष) से पूछा कि तुम यहाँ क्या कर रहे हो। उन्होंने कहा कि पढ़ रहा हूँ। मैंने पूछा कि तुम क्या सोचते हो। उन्होंने जवाब दिया, "पढ़-लिखकर अपने पैरों पर खड़ा हो जाऊँगा।" शंकर शर्मा (12 वर्ष) नाम के एक लड़के ने बताया कि वह दोनों पैरों से विकलांग था। मैंने उससे पूछा कि तुम पढ़ने के बाद क्या करोगे। उसने जवाब दिया, "मैं पढ़कर अपने पैरों पर खड़ा होना चाहता हूँ।" यह बात वे बच्चे कह रहे थे, जो अपने दोनों पैरों से और शारीरिक रूप से विकलांग थे और खड़े नहीं हो सकते थे। मैंने सोचा कि ज्ञान में कितनी अजीब शक्ति है। ज्ञान इंसान को इतना जागरूक बना देता है कि वह शारीरिक रूप से कमज़ोर होते हुए भी मानसिक रूप से इतना मज़बूत हो जाए कि उसकी शारीरिक कमज़ोरी उसकी प्रगति में बाधा न बने।

इसके अलावा वर्तमान युग में शोध से यह सिद्ध हो चुका है कि व्यक्ति पूर्ण रूप से मज़बूत या कमज़ोर नहीं होता। पहले विकलांगों के लिए 'विकलांग' (disabled) शब्द का इस्तेमाल किया जाता था, लेकिन अब यह शब्द अप्रचलित हो गया है। अब ऐसे व्यक्तियों को 'दिव्यांग' (differently abled) कहा जाता है यानी एक लिहाज़ से विकलांग, लेकिन अन्य मामलों में शक्तिशाली।

योग्यता पैदा कीजिए

एम.ए. ख़ान हायर सेकंडरी की परीक्षा में अच्छे नंबर से पास हुए थे, लेकिन किसी वजह से वहाँ समय पर आगे दाख़िला नहीं ले सके,

यहाँ तक कि अक्टूबर का महीना भी आ गया। अब ज़ाहिर तौर पर कहीं एडमिशन मिलने का कोई रास्ता नहीं था। तब भी शिक्षा के प्रति उनकी रुचि उन्हें हिंदू साइंस कॉलेज के प्रिंसिपल के दफ़्तर तक ले गई।

"सर, मैं बी.एससी. में एडमिशन लेना चाहता हूँ।" उन्होंने हिंदू कॉलेज के प्रिंसिपल से कहा।

"यह अक्टूबर का महीना है, दाख़िले बंद हो गए हैं। अब तुम्हारा दाख़िला कैसे होगा?"

"अगर आप दाख़िला दे दें तो बड़ी कृपा होगी, नहीं तो मेरा पूरा साल बेकार हो जाएगा।"

"हमारे यहाँ सभी सीटें भर चुकी हैं। अब और दाख़िले की कोई गुंजाइश नहीं है।"

प्रिंसिपल इतना बेरुख़ी से व्यवहार कर रहे थे कि ऐसा लग रहा था, जैसे वे कभी दाख़िला नहीं देंगे और अगला वाक्य, जो शायद छात्र को सुनना पड़ेगा — "कमरे से बाहर निकलो," लेकिन छात्र के आग्रह पर उन्होंने बेदिली से पूछा, "तुम्हारे मार्क्स कितने हैं?" प्रिंसिपल का विचार था कि उसके मार्क्स अवश्य ही बहुत कम होंगे, इसीलिए उसे कहीं दाख़िला नहीं मिला। इसलिए जब छात्र अपना ख़राब रिज़ल्ट बताएगा, तो उसके अनुरोध को अस्वीकार करने का उचित कारण हाथ आ जाएगा, लेकिन छात्र का जवाब उसकी उम्मीद के विपरीत था। उसने कहा, "सर! 85 प्रतिशत।"

इस वाक्य ने प्रिंसिपल पर जादू का काम किया। तुरंत उनका मूड बदल गया। उन्होंने कहा, "बैठो।" इसके बाद उन्होंने छात्र के काग़ज़ात देखे और जब काग़ज़ात से पुष्टि हो गई कि वह सचमुच ही 85 प्रतिशत अंकों के साथ पास हुआ है, तो उसने पिछली तारीख़ में आवेदन-पत्र लिखवाया। उन्होंने देरी के बावजूद न केवल एम.ए ख़ान को अपने

कॉलेज में दाख़िला दिलाया, बल्कि प्रयास करके उसे स्कॉलरशिप भी दिलवाई।

अगर वही छात्र इस स्थिति में प्रिंसिपल के पास जाता कि वह तीसरी श्रेणी से पास हुआ होता और प्रिंसिपल उसको दाख़िला नहीं देता, तो उस छात्र पर क्या असर होता? वह इस तरह लौटता कि उसके दिल में नफ़रत और शिकायत भरी होती। वह लोगों से कहता कि मेरे साथ पक्षपात हुआ है, नहीं तो मुझे अवश्य दाख़िला मिलना चाहिए था। दाख़िला न मिलने का कारण उसका ख़राब रिज़ल्ट होता, लेकिन वह हिंदू कॉलेज को दोष देता। माहौल की प्रतिक्रिया अकसर ख़ुद हमारी स्थिति का ही परिणाम होती है, लेकिन हम उसका दोष माहौल को देते हैं, ताकि हम ख़ुद को निर्दोष साबित कर सकें।

अगर किसी इंसान ने ख़ुद अपनी ओर से कमी न की हो और ज़माने द्वारा निर्धारित तैयारियों के साथ उसने जीवन में प्रवेश किया हो, तो दुनिया उसे जगह देने के लिए मजबूर होगी। वह हर माहौल में अपनी जगह बनाएगा, उसे हर बाज़ार से अपनी पूरी क़ीमत मिलेगी। इसके अलावा ऐसी स्थिति में उसमें उच्च संस्कार पैदा होंगे। वह अपने अनुभवों से साहस, आत्मविश्वास, उच्च मनोबल, शालीनता, दूसरों की स्वीकृति, यथार्थवादिता, लोगों के साथ अच्छे संबंध का सबक़ सीखेगा। वह शिकायत मानसिकता से ऊपर उठकर सोचेगा। माहौल इसे स्वीकार करेगा, इसलिए वहाँ ख़ुद भी माहौल को स्वीकार करने पर मजबूर होगा।

इसके विपरीत अगर उसने ख़ुद को योग्य साबित करने में लापरवाही की हो, अगर वह कम योग्यताओं के साथ जीवन के मैदान में उतरा है, तो निश्चित ही वह संसार में जगह बनाने में असफ़ल हो जाएगा और इसके परिणामस्वरूप उसमें जो संस्कार पैदा होंगे, वह निस्संदेह निम्न क़िस्म के होंगे। वह शिकायत, झुँझलाहट, क्रोध, यहाँ तक कि आपराधिक

मानसिकता का शिकार होकर रह जाएगा। जब इंसान असफ़ल होता है, तो उसमें ग़लत प्रकार की मानसिकता उभर आती है। हालाँकि, इंसान की असफ़लता का कारण हमेशा उसकी अपनी कमज़ोरी ही होती है, लेकिन ऐसा बहुत कम होता है कि वह ख़ुद को दोषी ठहराए। वह हमेशा अपनी असफ़लताओं के लिए दूसरों को ज़िम्मेदार ठहराता है। वह स्थिति का यथार्थ विश्लेषण करने में असमर्थ रहता है। कम तैयारी इंसान को एक साथ दो प्रकार की हानियों का उपहार देती है। अपने लिए असफ़लता और दूसरों के बारे में शिकायत।

पत्थर हर किसी के लिए कठोर है, लेकिन वह उस आदमी के प्रति नर्म हो जाता है, जिसके पास उसे तोड़ने के लिए औज़ार हैं। हर मामले में इसी प्रकार की स्थिति का सामना करना पड़ता है। अगर आप योग्यता के साथ जीवन के मैदान में उतरे हैं, तो आप अपने लिए अपनी वास्तविक स्थिति से भी ज़्यादा अधिकार पा सकते हैं। समय निकल जाने के बाद भी एक अजनबी कॉलेज में आपको दाख़िला मिल सकता है, लेकिन अगर आप बिना योग्यता के जीवन के मैदान में उतरे हैं, तो आपको अपना वास्तविक अधिकार भी नहीं मिल सकता।

गैस नीचे नहीं समाती, तो वह ऊपर उठकर अपने लिए जगह बना लेती है। अगर ऊँचाई पानी को आगे नहीं बढ़ने देती, तो वह ढलान की ओर से अपना रास्ता बना लेता है। अगर पेड़ सतह से ऊपर क़ायम नहीं हो सकता, तो वह ज़मीन को फाड़कर उससे उपजे जीवन का अधिकार वसूल कर लेता है। यह विधि जिसे ईश्वर ने अपने प्रत्यक्ष प्रबंधन के तहत ग़ैर-इंसानी दुनिया में स्थापित किया है, वही इंसान को भी अपनी परिस्थितियों के अनुसार अपनाना है।

प्रत्येक व्यक्ति जो ख़ुद को दुनिया में सफ़ल देखना चाहता है, उसे सबसे पहले अपने भीतर सफ़लता की योग्यता पैदा करनी चाहिए। उसे चाहिए कि वह ख़ुद को जाने और फिर अपनी परिस्थितियों को समझे।

अपनी शक्तियों को ठीक से व्यवस्थित करे। जब वह किसी परिस्थिति का सामना करे, तो इस तरह करे कि उसने इसके मुक़ाबले में अपनी योग्यता साबित करने के लिए ख़ुद को पूरी तरह से सशस्त्र कर लिया हो। उसने परिस्थिति से अपना महत्त्व मनवाने के लिए आवश्यक कार्य कर लिए हों। अगर यह सब हो जाए, तो इसके बाद आपके कार्य का, जो दूसरा आवश्यक परिणाम सामने आएगा, वह वही होगा जिसे हमारी भाषा में सफ़लता कहा जाता है। (24 नवंबर, 1967)

काम की तलाश में

यह 14 दिसंबर, 2004 की घटना है। एक मुस्लिम युवक मुझसे मिलने आया। उसने अपना नाम मुहम्मद ईसा बताया। उसने कहा कि मैं 1998 से बेरोज़गार हूँ और काम की तलाश में दिल्ली आया हूँ। उसने अपनी कुछ परिस्थितियाँ बताईं जिससे मुझे लगा कि उसे सही सलाह देने वाला कोई नहीं मिला। उसके माता-पिता ने भी शायद लाड़-प्यार के अलावा कोई ऐसी बात नहीं बताई, जो उसके जीवन के निर्माण में सहायक हो।

मैंने कहा कि मैं तुम्हें कोई काम नहीं दे सकता। हालाँकि, मैं तुम्हें जीवन की एक सच्चाई बता सकता हूँ, जो इस दुनिया में काम पाने के लिए ज़रूरी है। वह सच्चाई यह है कि दुनिया को इस बात से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि तुम बेरोज़गार हो। दुनिया को बस इस बात में दिलचस्पी है कि तुम्हारे अंदर कोई ऐसी योग्यता है, जो उसके काम आ सके। अगर तुम्हें काम चाहिए, तो अपने आप को इस क़ाबिल बनाओ कि काम ख़ुद तुम्हें ढूँढ़े, न कि तुम काम को ढूँढ़ो।

सच्चाई यह है कि इस दुनिया के निर्माता ने इसे स्वार्थ के आधार पर बनाया है। हर व्यक्ति का अपना एक स्वार्थ है और वह उसी स्वार्थ के लिए दौड़ रहा है। ऐसी दुनिया में सफ़लता का एक ही तरीक़ा है और वह यह है कि आप साबित कर सकें कि आप दुनिया के स्वार्थ को पूरा कर सकते हैं। दुनिया का काम करो और दुनिया तुम्हें काम देने के लिए मजबूर हो जाएगी। 'काम की तलाश' की मानसिकता इंसान के अंदर निराशा पैदा करती है और अपने आप को उपयोगी बनाने का विचार इंसान के अंदर विश्वास और प्रेरणा पैदा करता है। इंसान को चाहिए कि वह दूसरों से उम्मीद न रखे, बल्कि अपने काम को अपने अंदर ही ढूँढ़े। वह अपनी योग्यता को पहचाने और उसे निखारकर समाज के लिए उपयोगी बन जाए। उसे इतनी तैयारी करनी चाहिए कि वह दूसरों की ज़रूरत बन जाए। यही दुनिया में सफ़लता का रहस्य है।

शिक्षण और प्रशिक्षण

अगस्त 1945 में जापान पूरी तरह नष्ट हो गया। उसने अपनी राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रता खो दी थी।। इसके बाद, जापान ने राजनीतिक स्वतंत्रता के मुद्दे को उठाए बिना आर्थिक स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करना शुरू किया। इस पद्धति के माध्यम से, जापान ने इतनी सफ़लता हासिल की कि आज उसे एक आर्थिक सुपर पॉवर (economic super power) माना जाता है। 1990 तक जापान ने दुनिया को 5 खरब डॉलर का कर्ज़ दिया था। अनुमान है कि 1995 तक जापान के वैश्विक ऋण की मात्रा 10 खरब डॉलर हो जाएगी। 1945 में जापान अमेरिका का राजनीतिक गुलाम था, लेकिन आज जापान ने ख़ुद अमेरिका को अपना आर्थिक कर्ज़दार बना लिया है।

एक पाकिस्तानी पत्रकार, श्री अबू ज़र ग़फ़ारी, मई 1992 में काबुल गए। वहाँ उनकी मुलाक़ात एक जापानी पत्रकार से हुई। उन्होंने जापानी पत्रकार से पूछा कि जापान की इस अद्भुत प्रगति का रहस्य क्या है? जापान ने असंभव को कैसे संभव बना दिया?

जापानी पत्रकार ने जवाब दिया कि जापान की उच्च प्रगति का रहस्य जापानी राष्ट्र के उच्च चरित्र में छुपा हुआ है। उसने कहा कि हमारे पास प्राकृतिक संसाधन नहीं हैं, इसलिए हम अपने बच्चों को अपनी सबसे बड़ी पूँजी मानते हैं। जापान का हर घर एक जापानी बच्चे के प्रशिक्षण का केंद्र है। जापानी लोग अपने सर्वश्रेष्ठ संसाधन अपने बच्चों की शिक्षा पर ख़र्च करते हैं। नतीजतन, जापानी राष्ट्र अब पूरी तरह से शिक्षित राष्ट्र है। हमारे यहाँ अज्ञानता का कोई अस्तित्व नहीं है। जापान में इतने सारे वैज्ञानिक रूप से शिक्षित लोग हैं कि आप जापान को एक वैज्ञानिक राष्ट्र कह सकते हैं।

इस शिक्षा और प्रशिक्षण ने जापान के लोगों में सर्वोच्च राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण किया है, उदाहरण के लिए, जापानी लोग अत्यंत देशभक्त है। अगर देश को एक रुपये का नुक़सान हो रहा हो, तो एक जापानी अपने देश को एक रुपये के नुक़सान से बचाने के लिए सौ रुपये का नुक़सान सहने को अपना सम्मान समझेगा।

(नवा-ए-वक्त, लाहौर, 12 जुलाई, 1992)

जापान ने अपने प्रतिद्वंद्वी से टकराव को छोड़ दिया। उसके बाद ही यह संभव हुआ कि उसने अपने देश में एक उच्च वैज्ञानिक समाज का निर्माण किया। यही इस दुनिया में प्रगति और सफ़लता का एकमात्र रास्ता है।

पहला स्कूल

इस्लाम में ज्ञान का महत्त्व इतना अधिक है कि यह हर दूसरी ज़रूरत से ऊपर है। वर्तमान समय में मुसलमान शिक्षा के क्षेत्र में अन्य समुदायों से पिछड़ गए हैं और इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि इस युग में स्थापित किए गए शैक्षिक संस्थानों के अधिकांश शिक्षक ग़ैर-मुस्लिम थे।

मुस्लिम नेताओं ने कहा कि एक ग़ैर-मुस्लिम शिक्षक हमारे बच्चों को बिगाड़ देगा, इसलिए मुसलमानों को इन संस्थानों में प्रवेश नहीं दिलाना चाहिए। परिणामस्वरूप, मुसलमान शिक्षा में बहुत पीछे रह गए। यह एक ग़लती थी। इसका सुबूत यह है कि इस्लाम के इतिहास में खोला गया पहला स्कूल ऐसा था, जिसके सभी शिक्षक ग़ैर-मुस्लिम थे। यह स्कूल मदीना में बहुदेववादी कैदियों द्वारा खोला गया था। कुछ लोग 'सफ़ा' को पहला इस्लामी स्कूल कहते हैं, लेकिन सफ़ा एक प्रशिक्षण केंद्र था, न कि एक स्कूल। इस्लाम का पहला वह स्कूल है, जिसे बद्र की जंग के कैदियों के माध्यम से मदीना में स्थापित किया गया था और इसके सभी शिक्षक ग़ैर-मुस्लिम थे। हालाँकि, इस शिक्षा प्रणाली के कारण मदीना में कुछ समस्याएँ भी उत्पन्न हुईं। उदाहरण के लिए, एक परंपरा में बताया गया है कि पैग़म्बर मोहम्मद ने बद्र के कैदियों की रिहाई की क़ीमत यह तय की कि वे मदीना में बच्चों को पढ़ना-लिखना सिखाएँ।

उसके बाद एक दिन एक लड़का रोता हुआ अपनी माँ के पास आया। माँ ने पूछा, "तुम्हारे साथ क्या हुआ?" उसने कहा, "मेरे शिक्षक ने मुझे मारा है।" (मुसनद अहमद, हदीस संख्या 2216)। ये सभी कैदी मुसलमानों के दुश्मन थे। उन्हें छोड़ने में यह डर था कि वे फिर से

मुसलामानों के ख़िलाफ़ साज़िश कर सकते हैं। फिर भी, उन्हें तय की गई कीमत अदा करने पर रिहा कर दिया गया। इससे यह पता चलता है कि इस्लाम में शिक्षा का महत्त्व इतना अधिक है कि हर प्रकार के ख़तरे को नज़रअंदाज़ करके इसे हासिल किया जाना चाहिए।

उसे स्कूल से निकाल दिया गया

प्रोफेसर अल्बर्ट आइंस्टीन (1879-1955) ने 20वीं सदी के विज्ञान में एक महान क्रांति पैदा की, लेकिन उसके जीवन की शुरुआत बेहद साधारण रही। तीन साल की उम्र तक वह बोलना शुरू नहीं कर सका। वह एक सामान्य पिता का सामान्य बच्चा था। नौ वर्ष की आयु तक वह बिलकुल साधारण बच्चा प्रतीत होता था। स्कूली शिक्षा के दौरान उसे एक बार स्कूल से निकाल दिया गया था, क्योंकि उसके शिक्षकों का मानना था कि उसकी शैक्षणिक अक्षमता के कारण वह अन्य छात्रों पर बुरा प्रभाव डाल रहा था। उन्हें ज़्यूरिक के पॉलिटेक्निक में पहली बार प्रवेश नहीं मिल सका, क्योंकि दाख़िले की परीक्षा में उसके मार्क्स बहुत कम थे। इसलिए उसने और ज़्यादा मेहनत की और अगले वर्ष में दाख़िला लिया। उसके एक शिक्षक ने उनके बारे में कहा—

Albert was a lazy dog.

अल्बर्ट एक आलसी कुत्ता था।

20 साल की उम्र तक अल्बर्ट आइंस्टीन में कोई भी असामान्य लक्षण नहीं दिखे, लेकिन इसके बाद उसने कड़ी मेहनत करनी शुरू कर दी और वह उस ऊँचाई पर पहुँचा, जो आज के युग में शायद ही कोई

वैज्ञानिक हासिल कर पाया हो। इसी आधार पर उसके एक जीवनी-लेखक ने लिखा है—

We could take heed that it is uncessary to be a good student to become Einstein.

हमें यह जानना चाहिए कि आइंस्टीन बनने के लिए किसी व्यक्ति के लिए छात्रावस्था में प्रतिष्ठित होना आवश्यक नहीं है।

आइंस्टीन ने अपनी पहली वैज्ञानिक किताब तब प्रकाशित की, जब वह 26 वर्ष का था। तब से उसकी शोहरत निरंतर बढ़ती गई। आइंस्टीन का जीवन बहुत ही सादा था। वह बहुत सादा खाना खाता था। वह अकसर आधी रात तक अपने काम में लगा रहता था। उसे इज़राइल के राष्ट्रपति पद की पेशकश की गई थी, लेकिन उसने इनकार कर दिया। उसका कहना था कि राजनीति समाज का कैंसर है। उसने 1933 में हिटलर की जर्मनी को छोड़ दिया था। हिटलर की सरकार ने घोषणा की कि जो व्यक्ति आइंस्टीन का सिर काटकर लाएगा, उसे 20,000 मार्क्स का इनाम दिया जाएगा। उस समय यह रक़म बहुत ज़्यादा थी, लेकिन आइंस्टीन की महानता लोगों के दिलों पर इस क़द्र क़ायम हो चुकी थी कि कोई भी इस पुरस्कार को लेने की हिम्मत नहीं कर सका। (7 अक्टूबर, 1979)

इतिहास में ऐसे कई उदाहरण हैं, जो बताते हैं कि बड़ा इंसान बनने के लिए बड़े परिवार में पैदा होना ज़रूरी नहीं। इंसान मामूली स्थिति से शुरुआत करके भी बड़ी सफ़लता हासिल कर सकता है, बशर्ते कि वह संघर्ष की शर्तें पूरी करे। वास्तव में वे लोग ज़्यादा भाग्यशाली होते हैं, जिन्हें कठिनाइयों में अपने जीवन की शुरुआत करनी पड़ती है, क्योंकि कठिन परिस्थितियाँ हमें प्रेरित करती हैं और हमारे भीतर छिपी हुई क्षमताओं को जगाती हैं। इसके साथ ही जीवन में सबसे अच्छे सबक़ हमेशा कठिन परिस्थितियों में ही मिलते हैं। एक बड़े आदमी का

विकास सुख-सुविधाओं में नहीं, बल्कि कठिनाइयों में होता है। सच तो यह है कि इस संसार में संभावनाओं की कोई सीमा नहीं है। अगर किसी को यहाँ अपने काम के लिए मामूली शुरुआत मिल जाए, तो उसे निराश नहीं होना चाहिए। मामूली परिस्थितियाँ जीवन की सबसे मज़बूत सीढ़ी होती हैं। इतिहास की अधिकांश सर्वोच्च उपलब्धियाँ मामूली परिस्थितियों से ही निकली हैं।

शिक्षा की ओर

बीबीसी लंदन के उर्दू विभाग की एक टीम ने भारतीय राज्य गुजरात का दौरा किया। वहाँ उन्होंने विशेष रूप से गुजरात के मुसलमानों से मुलाक़ात की और इस विषय पर एक रिपोर्ट तैयार की। 22 जुलाई, 2004 को बीबीसी लंदन के प्रसारण में मैंने इस रिपोर्ट का एक हिस्सा सुना। प्रसारण में कहा गया कि राज्य में पिछले सांप्रदायिक दंगों (फरवरी-मार्च 2002) के बाद गुजरात के मुसलमानों में बड़े पैमाने पर एक नया रुझान उभरा है। अब यहाँ का हर मुसलमान शिक्षा के बारे में सोच रहा है। हर कोई यह कह रहा है: अपने बच्चों को पढ़ाओ।

यह एक नया चलन है। 1947 के बाद भारतीय मुसलमानों में लगातार एक ही मानसिकता पाई जा रही थी। वह थी शिकायत और विरोध की मानसिकता और हिंसा का जवाब हिंसा से देना। आधी सदी से अधिक समय के अनुभव के बाद यह सिद्धांत असफ़ल साबित हुआ। अब पहली बार मुसलमानों में यह सोच उत्पन्न हुई है कि प्रतिक्रिया आधारित मानसिकता और अतीत के कड़वे अनुभवों में जीना व्यर्थ है। अब पहली बार वे पीछे की बातों को भूलकर भविष्य की ओर सोच रहे हैं। वे बदले के बजाय निर्माण का सिद्धांत अपना रहे हैं। इस आधुनिक

प्रवृत्ति को एक वाक्य में इस तरह कहा जा सकता है: "अतीत को भूलो, बच्चों को पढ़ाओ।"

1947 के बाद घटी दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं के परिणामस्वरूप सभी भारतीय मुसलमान प्रतिक्रिया की मानसिकता के शिकार हो गए थे। मैंने पहली बार मुसलमानों को यह बताना शुरू किया कि जीवन का रहस्य सकारात्मक सोच में है, न कि नकारात्मक सोच में। 1965 में मैंने यह प्रयास लखनऊ के साप्ताहिक 'नदाए मिल्लत' के माध्यम से शुरू किया। इसके बाद 1967 से यह कार्य दिल्ली के साप्ताहिक 'अल-जमीयत' द्वारा जारी रहा। फिर 1976 में मैंने दिल्ली से मासिक 'अल-रिसाला' शुरू किया और इसे अधिक संगठित तरीक़े से करने लगा। इसके अलावा, मैंने देश के विभिन्न अख़बारों और पत्रिकाओं में इसके समर्थन में लेख प्रकाशित किए। मैंने पूरे देश की यात्रा करके सभाओं और बैठकों के माध्यम से इस सकारात्मक संदेश को भारतीय मुसलमानों तक पहुँचाया।

यह दृष्टिकोण मुसलमानों के लिए नया था। एक अरबी कहावत है—

"लोग उस चीज़ के दुश्मन बन जाते हैं, जिसे वे नहीं जानते"

इसलिए शुरू में मुसलमानों ने इसका विरोध किया। उन्होंने धैर्य और संयम के सिद्धांत को दुश्मन की चाल समझा, लेकिन लगातार अनुभव के बाद अब उनकी आँखें खुल गई हैं। अब न केवल गुजरात, बल्कि पूरे देश में मुसलमानों की सोच बदल गई है। अब वे समझ चुके हैं कि दूसरों को दोष देना पूरी तरह व्यर्थ है। सही तरीक़ा यह है कि सारा ध्यान अपनी ख़ुद की प्रगति और स्थिरता पर लगाया जाए।

यह निस्संदेह एक स्वस्थ प्रवृत्ति है। वैज्ञानिक क्रांति के बाद दुनिया में एक नया युग आ गया है। पहले कहा जाता था:

"हर कि शमशीर ज़ंद सिक्का बेह नामश ख़्वानंद लेकिन"

"जिसके पास तलवार होती है, सिक्के पर उसी का नाम होता है"

अब हर जागरूक व्यक्ति जानता है कि शक्ति का स्रोत ज्ञान है। पहले अगर दुनिया में तलवारधारियों का प्रभुत्व था, तो अब यह उन लोगों के लिए मुक़द्दर है, जिनके पास ज्ञान हैं।

यह दुनिया प्रतिस्पर्धा (competition) की दुनिया है। यहाँ हमेशा ऐसा होगा कि आपको दूसरों से कड़वे अनुभव मिलेंगे, अपने लोगों से भी और दूसरों से भी। वह व्यक्ति अज्ञानी है, जो कड़वी यादों में जीता है। बुद्धिमान वह है, जो कड़वी यादों को भूलकर धैर्य के साथ भविष्य के निर्माण में समय लगाए। शिक्षा का उद्देश्य केवल नौकरी प्राप्त करना नहीं है। शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य यह है कि लोगों को जागरूक बनाया जाए। इस दुनिया में सभी समस्याओं की जड़ अज्ञानता है और सभी समस्याओं का समाधान यह है कि लोग जागरूक हों। उन्हें समस्याओं की वास्तविक प्रकृति को समझना चाहिए। उन्हें परिस्थितियों का निष्पक्ष विश्लेषण करना आना चाहिए। उन्हें यह जानना चाहिए कि इस दुनिया में क्या हासिल किया जा सकता है और क्या बिलकुल भी हासिल नहीं हो सकता है।

"**बच्चों की परवरिश**" एक ऐसी पुस्तक है जो बच्चों की परवरिश के मूल सिद्धांतों पर केंद्रित है। यह बताती है कि परिवार समाज की बुनियादी इकाई है, और इसके सदस्यों का उचित विकास ही एक बेहतर समाज की नींव रखता है। पुस्तक में माता-पिता की ज़िम्मेदारियों, बच्चों की शिक्षा, घर के वातावरण, नैतिकता और पारिवारिक मूल्यों पर चर्चा की गई है। इसमें बताया गया है कि कैसे माता-पिता अपने बच्चों को अच्छे संस्कार सिखा सकते हैं और उन्हें जीवन की सही दिशा में मार्गदर्शित कर सकते हैं।

पुस्तक का उद्देश्य बच्चों के व्यवहार को सकारात्मक रूप से प्रभावित करना, उन्हें एक अच्छा इंसान बनाना और समाज के लिए उपयोगी व्यक्ति के रूप में तैयार करना है। यह समझाती है कि माता-पिता के सही दृष्टिकोण और व्यवहार से बच्चों के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इसके साथ ही, यह उन्हें आत्मनिर्भर और आत्मविश्वासी बनाने तथा जीवन की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार करने के तरीकों पर भी ज़ोर देती है।

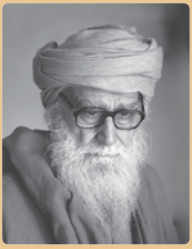

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान 'सेंटर फॉर पीस एंड स्प्रिचुएलिटी', नई दिल्ली के संस्थापक थे। मौलाना का मानना था कि शांति और आध्यात्मिकता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं : आध्यात्मिकता शांति की आंतरिक संतुष्टि है और शांति आध्यात्मिकता की बाहरी अभिव्यक्ति। मौलाना ने शांति और आध्यात्मिकता से संबंधित 200 से अधिक पुस्तकें लिखी हैं। विश्वशांति में अपने महत्वपूर्ण योगदान के लिए उन्हें अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचान प्राप्त थी।

CPS International
centre for peace and spirituality
www.cpsglobal.org
info@cpsglobal.org

Goodword
www.goodwordbooks.com
info@goodwordbooks.com